अमृत की दिशा

भगवान श्री रजनीश

"…मनुष्य के सामने सबसे बड़ी साधना और सबसे बड़ा लक्ष्य है––किसी भी भांति वह अपने भीतर प्रवेश कर जाये, स्वयं को जान ले। और इसके दो मार्ग हैं––!"

इस सम्बन्ध में भगवान श्री रजनीश के विचारों में जो नई गति, नई दिशा और नया प्रवाह मिलता है, यही इस पुस्तक का विषय है!

––इसी पुस्तक में से

स्टार पॉकेट बुक्स में

भगवान श्री रजनीश का उपलब्ध साहित्य

- जीवन दर्शन
- काम ध्यान और आध्यात्म
- हंसना मना है
- सम्भावनाओं की आहट

भगवान श्री रजनीश

स्टार पॉकेट सीरीज

SH : 352

(अमृत की दिशा)

प्रथम संस्करण
१९७६

प्रकाशक : स्टार पब्लिकेशंज प्रा० (लि०)
४/५ बी, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-११०००१
मूल्य : तीन रुपये मात्र (3.00)
मुद्रक : हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस, नरैना इण्डस्ट्रियल एरिया, नई दिल्ली-२८

Amrit Ki Disha (Bhagwan Shree Rajneesh.) Rs. 3.00

१. उन्मुक्त जिज्ञासा

एक साधु के आश्रम में एक युवक बहुत समय से रहता था। फिर ऐसा संयोग आया कि युवक को आश्रम से विदा होना पड़ा। रात्रि का समय है। बाहर घना अंधेरा है। युवक ने कहा, 'रोशनी की कुछ व्यवस्था करने की कृपा करें। उस साधु ने दिया जलाया। उस युवक को हाथ में दिया दिया। उसे सीढ़ियां उतारने के लिए खुद उसके साथ हो लिया और वह सीढ़ियां पार कर चुका और आश्रम का द्वार भी पार कर चुका तो उस साधु ने कहा, अब मैं अलग हो जाऊं। क्योंकि इस जीवन के रास्ते पर बहुत दिनों तक कोई किसी का साथ नहीं दे सकता है। अच्छा है कि इसके पहले मैं विदा हो जाऊं। कि तुम साथ से आदी हो जाओ, इतना कह कर उस घनी रात में, उस अन्धेरी रात में उसने अपने हाथ से दिये को फूंककर बुझा दिया। वह युवक बोला, यह क्या पागलपन हुआ ? अभी तो आश्रम से बाहर भी नहीं निकल पाये साथ भी छोड़ दिया और

दिया भी बुझा दिया। उस साधु ने कहा, दूसरों के जलाये हुए दिये का कोई मूल्य नहीं है। अपना ही दिया हो, तो अन्धेरे में काम देता है। किसी दूसरे के दिये काम नहीं देते। खुद के भीतर से प्रकाश निकले तो रास्ता प्रकाशित होता है। और किसी तरह रास्ता प्रकाशित नहीं होता।

मैं निरन्तर सोचता हूं, लोग सोचते होंगे कि मैं आपके हाथ में कोई दिया दे दूंगा, जिससे आपका रास्ता प्रकाशित हो जाय तो आप गलती में हैं। आपके हाथ में कोई दिया होगा तो मैं उसे बड़ी निर्ममता से फूंक कर बुझा दूंगा। मेरी मंशा और मेरा इरादा यही है कि आपके हाथ में अगर कोई दूसरे का दिया हुआ प्रकाश हो तो मैं उसे फूंक दूं। उसे बुझा दूं। आप अन्धेरे में अकेले कूद जायं, कोई आपका संगी साथी हो तो उसे भी छीन लूं। और तभी जब आपके पास दूसरों का जलाया हुआ प्रकाश न रह जाय। दूसरों का साथ न रह जाय तब आप जिस रास्ते पर चलते हैं, उस रास्ते पर परमात्मा आपके साथ हो जाता है और आपकी आत्मा का दिया जलने की संभावना पैदा हो जाती है।

सारी जमीन पर ऐसा हुआ है। सत्य की तो बहुत खोज है। परमात्मा की बहुत चर्चा है। लेकिन, लेकिन ये सारे कमजोर लोग कर रहे हैं। जो साथ छोड़ने को राजी नहीं हैं। जो दिया बुझाने को राजी नहीं हैं। अन्धेरे में जो अकेले चलने का साहस करता है, बिना प्रकाश के उसके भीतर साहस का प्रकाश पैदा होना शुरू हो जाता है। और जो सहारा खोजता है वह निरन्तर कमजोर होता चला जाता है। भगवान को आप सहारा न समझें, और जो लोग भगवान को सहारा समझते हैं वह गलती में हैं। उन्हें भगवान का

सहारा नहीं उपलब्ध हो सकेगा।

कमजोरों के लिए जगत में कुछ भी उपलब्ध नहीं होता, और जो शक्तिहीन हैं और जिनमें साहस की कमी है धर्म उनका रास्ता नहीं है। दिखता उल्टा है। दिखता यह है कि जितने कमजोर हैं, जितने साहसहीन हैं, वे सभी धार्मिक होते हुए दिखायी पड़ते हैं। कमजोरों को, साहसहीनों को, जिनकी मृत्यु करीब आ रही है, उनको, घबराहट में भय में धर्म ही मार्ग मालूम होता है। इसलिए धर्म के आस-पास कमजोर लोग इकट्ठे हो जाते हैं। जब कि बात उल्टी है। धर्म तो उनके लिए है, जिनके भीतर साहस हो। जिनके भीतर शक्ति हो। जिनके भीतर बड़ी दुर्दम्य हिम्मत हो और जो कुछ अंधेरे में अकेले बिना प्रकाश चलने का दुस्साहस कर सकें।

तो यह मैं प्राथमिक रूप से आपसे कहूं। दुनिया में यही वजह है कि जब से कमजोरों ने धर्म को चुना है तब से धर्म कमजोर हो गया, और सारी दुनिया में कमजोर ही धार्मिक हैं। जिनमें थोड़ी-सी हिम्मत है, वे धार्मिक नहीं हैं। जिनमें थोड़ा-सा साहस है वह नास्तिक हैं। जिनमें साहस की कमी है वे सब आस्तिक हैं।

भगवान की तरफ सारे कमजोर इकट्ठे हो गये हैं इसीलिए दुनिया में धर्म नष्ट होता चला जा रहा है। इन कमजोरों को भगवान तो बचा ही नहीं सकता, ये कमजोर भगवान को कैसे बचायेंगे, कमजोरों की कोई रक्षा नहीं है, और कमजोर भी किसी की रक्षा कैसे करेंगे?

सारी दुनिया में, मनुष्य के इतिहास के इन दिनों में, इन क्षणों में जो धर्म का अचानक ह्रास और पतन हुआ है, इसका बुनियादी कारण यही है। तो मैं आपको कहूं, अगर आप में साहस हो तो ही

धर्म के रास्ते पर चलने का मार्ग खुलता है। न हो, तो दुनिया में बहुत रास्ते हैं। धर्म अपने में ही हो सकता है। जो आदमी 'भय के कारण भयभीत होकर धर्म की तरफ आता हो वह गलत आ रहा है क्योंकि सारे धर्म-पुरोहित आपको भय देते हैं, नर्क का भय, स्वर्ग का प्रलोभन, पाप-पुण्य का भय, प्रलोभन और घबराहट पैदा करते हैं। वे घबराहट के द्वारा आपमें धर्म का प्रेम पैदा करना चाहते हैं। और यह आपको पता है कि भय से कभी प्रेम पैदा नहीं होता, और जो प्रेम भय से पैदा होता है वह प्रेम झूठा होता है, उसका कोई मूल्य नहीं होता है। आप भगवान से डरते हैं तो आप नास्तिक होंगे। आस्तिक नहीं हो सकते। कुछ लोग कहते हैं, जो भगवान से डरे वह आस्तिक है। बात ठीक नहीं है। जो ईश्वर से डरता हो, ईश्वर भीरु हो आस्तिक है। यह बिल्कुल झूठी बात है। ईश्वर से डरने वाला कभी आस्तिक नहीं हो सकता। क्योंकि डरने से कभी प्रेम पैदा नहीं होता, और जिसको हम भय करते हैं, उसे बहुत प्राणों के प्राणों में घृणा करते हैं। भय के साथ भीतर घृणा छिपी रहती है। जो लोग भगवान से भयभीत हैं, वे भगवान के शत्रु हैं, और उनके मन में भगवान के प्रति घृणा होगी।

मैं आपसे कहूं, ईश्वर से भय मत खाना। ईश्वर से भय खाने का कोई भी कारण नहीं है। इस सारे जगत में अकेला ईश्वर ही है जिससे भय खाने का कोई कारण नहीं है, और सारी चीजें भय खाने से हो सकती हैं। लेकिन हुआ उल्टा है, और मैं बड़े-बड़े धार्मिकों को यह कहते सुनता हूं, कि ईश्वर का भय खाओ, ईश्वर का भय खाने से पुण्य पैदा होगा। ईश्वर का भय खाने से सच्चरित्रता पैदा होगी। यह निहायत झूठी बातें हैं। भय से कहीं सदाचार

पैदा हुआ है? जैसे हमने रास्ते पर पुलिस वाले खड़े कर रखे हैं, वैसे हमने परलोक में भगवान को खड़ा कर रखा है। वह एक बड़े पुलिस वाले की हैसियत से है। एक बड़े कांस्टेबिल की हैसियत का है। भगवान को जिन्होंने कांस्टेबिल बना दिया है उन लोगों ने धर्म को बहुत नुकसान पहुंचाया है।

भगवान के प्रति भय से कोई विकसित नहीं होता। भगवान के प्रति तो बड़ा अभय चाहिए, और अभय का अर्थ क्या होगा? अभय का अर्थ होगा, कि जो लोग श्रद्धा करते हैं वे लोग भय के कारण श्रद्धा करते हैं। इसलिए श्रद्धा को मैं धर्म की आधारभूत पर्त नहीं मानता। आपने सुना होगा कि जिसको धार्मिक होना हो उसे श्रद्धालु होना चाहिए।

गांधी जी को एक बहुत बड़े व्यक्ति ने जाकर पूछा कि मैं परमात्मा को जानना चाहता हूं तो क्या करूं? तो गांधीजी ने कहा, विश्वास करो। अगर वह मुझसे पूछता तो मैं उससे यह नहीं कह सकता हूं कि विश्वास करो। गांधी जी की बात ठीक नहीं है। और उस आदमी ने गांधी जी को कहा कि विश्वास करूं, जिस बात को मैं जानता नहीं, विश्वास कैसे करूं? जिस बात से मैं परिचित नहीं हूं उसे मानूं कैसे? गांधी जी ने कहा, बिना माने तो परमात्मा को जाना नहीं जा सकता, और मैं आपसे यह कहना चाहता हूं कि जो मान लेते हैं वे कभी नहीं जान पाते। मैं आपसे यह कहना चाहता हूं कि जो परमात्मा को मान लेते हैं वे कभी नहीं जान सकेंगे। यह आपका दुर्भाग्य होगा कि आप परमात्मा को मानते हों। क्योंकि मानने का अर्थ यह हुआ कि आपने जिज्ञासा और खोज के द्वार बन्द कर दिये। मानने का अर्थ यह हुआ कि अब आपकी कोई तलाश

नहीं है। आपकी कोई खोज नहीं है। अब आपकी कोई इन्क्वायरी नहीं है। अब आप तो खोज नहीं रहे हैं। आप तो मान कर बैठ गये हैं। आपको डर है। श्रद्धा मृत्यु है। और संदेह ? संदेह जीवन है। संदेह खोज है। तो मैं आपसे श्रद्धालु होने को नहीं, मैं आपसे संदेह करने को कहता हूं। लेकिन संदेह करने का मेरा यह मतलब न समझ लेना कि मैं आपको ईश्वर को न मानने को कह रहा हूं क्योंकि न मानना भी मानने का एकरूप है। आस्तिक भी श्रद्धालु होता है। नास्तिक भी श्रद्धालु होता है। आस्तिक की श्रद्धा है, कि ईश्वर है, नास्तिक की श्रद्धा है, ईश्वर नहीं है। ये दोनों अज्ञानी हैं। इन दोनों की श्रद्धाएं हैं। इन दोनों की खोज नहीं है। संदेह तीसरी अवस्था है--आस्तिक और नास्तिक दोनों की है। संदेह तो स्वतंत्र चित्त की अवस्था है। वैसा व्यक्ति निर्भय होकर पूछता है, क्या है? और न वह परम्परा को मानता है। न वह रूढ़ि को मानता है। न वह शास्त्र को मानता है। वह किसी दूसरे के दिये को अंगीकार नहीं करता। वह यह कहता है खोजियेगा अपना दिया। वही साथी हो सकेगा दूसरे के दिये कितनी दूर तक, कितनी सीमा तक साथ दे सकेंगे? और इस जीवन के रास्ते पर अपने सिवाय, स्वयं के सिवाय कोई साथी नहीं है और कितनी बड़ी भीड़ खड़ी हो, कोई साथी नहीं है। महावीर को, बुद्ध को, कृष्ण को, क्राइस्ट को कितना ही ज्ञान मिला हो, एक रत्ती भर वे अपने ज्ञान आपको देने में समर्थ नहीं हैं।

इस जगत में ज्ञान दिया नहीं जा सकता, और सब चीजें दी भी जा सकती हैं, और स्मरण रखें, जो नहीं लिया जा सकता, नहीं दिया जा सकता, उसका मूल्य है जो लिया जा सकता है, दिया जा

सकता है उसका कोई मूल्य नहीं है। मैं तो ऐसा ही मानता हूं कि वही चीज संसार का हिस्सा है जिसको हम ले दे सकते हैं, और वह चीज सत्य का हिस्सा हो जाती है जिसको लेना देना सम्भव नहीं है। कोई इस आशा में न रहे कि वह अपनी श्रद्धाओं से सत्य की और परमात्मा की खोज कर लेगा। साधारणतः यही हमें सिखाया जाता है और इसके दुष्परिणाम हुए हैं। दुष्परिणाम हुए हैं कि दुनिया में इतने लोग धार्मिक हैं, लेकिन धर्म कहां है ? इतने मंदिर हैं, इतनी मस्जिद हैं, लेकिन मन्दिर, मस्जिद हैं कहां ?

कल रात मैं बात करता था। एक संन्यासी के पास मेरा एक मित्र मिलने गया था। उस संन्यासी ने पूछा, मंदिर जाते हो ? मेरे मित्र ने कहा, मंदिर है कहां ? हम तो रोज जायं, कोई मन्दिर बता दे। वह सुनकर हैरान हुआ। वह संन्यासी तो मंदिर में ठहरा हुआ था। उस संन्यासी ने कहा. यह जो तुम देख रहे हो, यह क्या हैं ? उस युवक ने कहा, यह तो मकान है। मंदिर कहां है ? यह तो मकान है और उस युवक ने कहा सारी जमीन पर जिनको लोग मन्दिर और मस्जिद कहते हैं, वे तो मकान हैं। मन्दिर कहां हैं ? और जिनको आप मूर्तियां कहते हैं, जिनको आप भगवान की मूर्तिया कहते हैं, कैसी आत्मप्रवंचना है और कैसा धोखा हैं। मिट्टी और पत्थर को अपनी कल्पना से हम भगवान बना लेते हैं। जैसे कि हम भगवान के श्रष्टा हैं।

सुना था मैंने भगवान मनुष्यों का श्रष्टा है। देखा यही कि आदमी-मनुष्य ही भगवान के श्रष्टा हैं, और हर एक आदमी अपनी-अपनी शकल में भगवान को बनाये लिये बैठा है। भगवान ने दुनिया को कभी बनाया नहीं, यह तो संदेह की बात है। लेकिन

आदमी ने भगवान की खूब शकलें बनायी हैं। यह सत्य है और जो भगवान आदमी का बनाया हुआ हो उसे भगवान कहना आदमी अहंकार और अज्ञान की घोषणा के सिवाय और कुछ भी नहीं है। जो आदमी का बनाया हुआ हो उसे भगवान कहना, आदमी के अज्ञान और अहंकार की घोषणा के सिवाय और क्या है? कैसा धोखा आदमी अपने को दे सकता है। यह हमारा निम्नतम अहंकार है कि हम सोचते हैं कि जो हम बनाते हैं वह भगवान हो सकता है। जो नहीं बनाया जा सकता और जिसे कभी कोई नहीं बना सकेगा और जो सबके बनाने के पहले है और मिट जाने के बाद भी शेष रह जाता है उसको हम भगवान कहते हैं।

उसका मन्दिर कहां है? उसकी मस्जिद कहां है? उसके मानने वाले लोग कहां हैं? उसका कोई मानना नहीं होता है। उसका तो जानना होता है। मानना नहीं होता है उसका कोई। उसका जानना होता है। अन्धा प्रकाश को मान लेगा तो उसके मानने का क्या मूल्य होगा? और वह प्रकाश की जो कल्पना करेगा। वह भी कैसी होगी? उसका प्रकाश से क्या सम्बन्ध होगा?

रामकृष्ण के पास एक दफा एक व्यक्ति आया और रामकृष्ण से उसने कहा, मुझे सत्य के सम्बन्ध में कुछ बतायें। रामकृष्ण से उसने कहा, कि मुझे परमात्मा के सम्बन्ध में कुछ कहें। रामकृष्ण ने कहा मुझे तुम्हारे पास आंखें तो दिखाई नहीं देतीं। तुम समझोगे कैसे? वह बोला, आंखें मेरे पास हैं। रामकृष्ण ने कहा, अगर इन आंखों से परमात्मा और सत्य जाना जाता होता तो परमात्मा और सत्य को जानने की जरूरत ही न रह जाती। सभी

लोग उसे जानते। और भी आंखें हैं, वह बोला, फिर भी कुछ तो समझायें? रामकृष्ण ने एक कहानी कही--वह कहानी बड़ी मीठी है। बड़ी अद्भुत है। बड़ी प्राचीन कथा है। हजारों-हजारों ऋषियों ने उस कहानी को कहा है और आने वाले जमाने में भी हजारों-हजारों ऋषि उस कहानी को कहेंगे। क्योंकि उसमें बड़ी पवित्रता समाविष्ट हो गयी है। बड़ी छोटी सी कहानी, बड़ी सरल सी कहानी कही है।

रामकृष्ण ने कहा, एक गांव में एक अन्धा था और अन्धे को दूध से बहुत प्रेम था। उसके मित्र जब भी आते थे उसे भेंट में दूध ले आते थे। उसने एक दफा अपने मित्रों को पूछा कि दूध को मैं इतना प्रेम करता हूं कि मैं जानना चाहता हूं कि दूध कैसा है, क्या है? मित्रों ने कहा, बड़ी मुश्किल है, कैसे बतायें? फिर भी समझने का है, कुछ तो समझायें। कुछ तो समझायें कि यह दूध क्या है, कैसा है? उसके एक मित्र ने कहा कि जो बगला होता है, और बगले के पंख जैसा सफेद है। अन्धा बोला मुझसे मजाक न करें। बगले को मैं जानता नहीं। उसके पंख के सफेदी को नहीं जानता मैं कैसे समझूंगा कि दूध कैसा है? कुछ और कोई रास्ता अख्तियार करो तो शायद मैं समझ जाऊं। उसके मित्र ने कहा, कैसे समझायें? एक मित्र ने कहा, बगला जो होता है, वह घास काटने के हंसिये की तरह टेढ़ी गर्दन वाला होता है। अन्धे ने कहा, आप पहेली बुझा रहे हैं। मैंने कभी देखी नहीं हंसिया। मुझे पता नहीं, वह कैसी टेढ़ी होती है? तीसरे मित्र ने कहा इतनी दूर क्यों जाते हो। उसने अपने हाथ को मोड़ कर और अन्धे को कहा, इस हाथ पर हाथ फेरो, तो पता चल जायेगा कि हंसिया कैसी होती है? उसने उसके हाथ

पर हाथ फेरा। घुमा हुआ, मुड़ा हुआ हाथ अनुभव हुआ। अन्धा नाचने लगा। वह बोला मैं समझ गया। दूध मुड़े हुए हाथ की तरह होता है।

और रामकृष्ण ने कहा कि सत्य के सम्बन्ध में जो नहीं जानते हैं, सारी उनको बतायी हुई बातें ऐसी ही हो जाती हैं। इसलिए आप से सत्य के सम्बन्ध में न कभी कुछ कहा गया है और न कभी कुछ कहा जा सकेगा। आपसे यह नहीं कहा जा सकता कि सत्य क्या है? आपसे इतना ही कहा जा सकता है कि सत्य को कैसे जाना जा सकता है? सत्य को नहीं बताया जा सकता लेकिन सत्य की विधि विचार की जा सकती है। उस विधि में श्रद्धा कोई हिस्सा नहीं है। खोज और अन्वेषण, जिज्ञासा और अभीप्सा—उसमें कोई चीज को मान लेने की कोई जरूरत नहीं है, और जब से दुनिया के धार्मिकों ने यह शुरुआत की कि भगवान को मान लो, स्वीकार कर लो, अंगीकार कर लो, तब से जो भी विवेकशील हैं वे सब भगवानके विरोध में खड़े हो गये हैं। क्योंकि स्वीकार करना, अज्ञान में किसी चीज को मान लेना, कभी भी जिसका थोड़ा भी विचार जागृत हो और विवेक प्रबुद्ध हो उसके लिए संभव न होगा।

अपने हाथों से धार्मिकों ने धर्म को विवेक विरोधी बनाकर खड़ा कर दिया है। तो मैं आज की सुबह आपसे यह कहना चाहूंगा कि धर्म का विवेक से कोई विरोध नहीं है। धर्म ही परिपूर्ण रूप से विवेक को प्रतिष्ठा देता है। धर्म विवेक का खण्डन नहीं है। विवेक के माध्यम से ही धर्म की परिपूर्ण उपलब्धि होती है, और अपने भीतर विवेक को जगाना होता है। श्रद्धा को नहीं। विवेक और मनुष्य के भीतर दो दिशाएं हैं। श्रद्धा का अर्थ है कि मैं मान लूं जो

कहा जाय। दुनिया के जितने प्रसारवादी हैं वे सब यह चाहते हैं कि वह जो कहें आप मान लें। दुनिया में जितने प्रोपेगेंडिस्ट हैं, चाहे वे राजनीतिक हों चाहे वे धार्मिक हों वे चाहते हैं कि जो वे कहें, आप मान लें। उनकी कही हुई बात में आपमें कोई इन्कार न हो। उनकी सबकी चेष्टाएं यही हैं कि आपका विवेक बिल्कुल सो जाय, और आपके भीतर एक अन्धी स्वीकृति पैदा हो जाय।

इसका परिणाम यह हुआ है कि जो बहुत कमजोर थे, जिनके भीतर विवेक की कोई संभावना नहीं थी, या जिनका विवेक बहुत ठप था, क्षीण हो गया था, जो साहस न कर सकते थे, किसी कारण से अपने विवेक को जगाने का वे सारे लोग धर्म के पक्ष में खड़े हो गये, और जिनमें थोड़ा भी साहस था वे सब धर्म के विरोध में चले गये। उन विरोधी लोगों ने विज्ञान को खड़ा किया और इन कमजोर लोगों ने धर्म को सम्हाले रखा। आज दोनों सामने खड़े हैं। अब धर्म रोज क्षीण होता जाता है और विज्ञान रोज विकसित होता चला जाता है। इसे कोई देखता नहीं कि यह क्या हो रहा है? हम समझते हैं, कि विज्ञान नुकसान पहुंचा रहा है। विज्ञान नुकसान नहीं पहुंचा रहा है। धर्म के दरवाजे विवेकशील के लिए जब तक बन्द रहेंगे तब तक विवेकशील विज्ञान के पक्ष में खड़ा रहेगा। धर्म के द्वार विवेकशील के लिए खुल जाने चाहिए और विवेकहीन के लिए बन्द हो जाने चाहिए।

श्रद्धा धर्म के लिए आधार नहीं रह जाना चाहिए। ज्ञान, विवेक, शोध धर्म का अंश हो जाना चाहिए। अगर यह हो सका तो धर्म से बड़ा विज्ञान इस जगत में दूसरा नहीं है और जिन लोगों ने धर्म को खोजा और जाना, उससे बड़े वैज्ञानिक नहीं हुए। उनकी

अप्रतिभ खोज है। मनुष्य के जीवन में उस खोज से बहुमूल्य कुछ भी नहीं है। उन सत्यों को थोड़ी सी भी झलक मिल जाय तो जीवन अपूर्व आनन्द और अमृत से भर जाता है।

तो मैं आपसे कहूंगा, बिबेक, जागरण, श्रद्धा नहीं। स्वीकार कर लेना नहीं शोध करना। किसी दूसरे को अंगीकार कर लेना नहीं। स्वयं अपनी साधना और अपने पैरों पर खड़ा होना और जानना। चाहे अनेक जन्म लग जायं। दूसरे के हाथ से लिया हुआ सत्य अगर एक क्षण में मिलता हो तो भी किसी कीमत का नहीं है और अगर अनेक जन्मों की श्रम और साधना से अपना सत्य मिलता हो तो उसका मूल्य है, और जिनके भीतर थोड़ी भी मनुष्य की गरिमा है। जिनको थोड़ा भी गौरव है, कि हम मनुष्य हैं, वे किसी के दिये हुए जूठे पत्ते को स्वीकार नहीं करेंगे। लेकिन हम सब जूठे पत्तों को स्वीकार किये बैठे हैं, और हमने अच्छे-अच्छे तर्क ईजाद कर लिये हैं जिनके माध्यम से हम अपनी श्रद्धा को जाहिर करते हैं। यह बहुत बड़ी प्रवंचना है। यह बहुत बड़ा डिसेप्सन है। यह समाप्त होना जरूरी है।

तो मैं आपसे कहूंगा—आपके भीतर बहुत बार श्रद्धा होती होगी कि मान लें। यह कमजोर मन है। कौन खुद खोजे? जितने आलसी हैं,जितने तामसी हैं, वे सब श्रद्धालु हो जायेंगे। क्योंकि कौन फिर खोजे? खोज की कौन चेष्टा करें? कृष्ण कहते हैं तो ठीक ही होगा। महावीर कहते हैं तो ठीक ही होगा। क्राइस्ट कहते हैं तो ठीक ही होगा। उन्होंने सारी खोज कर ली है। हमें तो सिर्फ स्वीकार कर लेना है। यह वैसा ही पागलपन है जैसा कोई आदमी दूसरों को प्रेम करते देखकर यह समझे कि मुझे प्रेम करने से क्या प्रयोजन? दूसरे

लोग प्रेम कर रहे हैं। मुझे तो सब समझ लेना है, ठीक है। लेकिन दूसरों को प्रेम करते देखकर क्या आप समझ पायेंगे कि प्रेम क्या है? इस जगत में सारे लोग प्रेम करते हों और मैं देखता होऊं तो भी नहीं समझ पाऊंगा जब तक वह आन्दोलन मेरे हृदय में न हो। जब तक वह किरणें मुझे आन्दोलित न कर जायं। जब तक वे हवाएं मुझे छू न जायं तब तक मैं प्रेम को नहीं जान सकूंगा। सारी दुनिया प्रेम करती हो तो किसी मतलब की नहीं है। सारी दुनिया बुद्ध, कृष्ण और क्राइस्ट से भरी पड़ी हो और मुझे सत्य का स्वयं अनुभव न होता हो तो मुझे कुछ पता नहीं चलेगा। कोई रास्ता नहीं है। सारी दुनिया में आंख वाले हैं और मैं अन्धा हूं तो क्या होगा? उनकी सबकी मिली हुई आंखें भी मेरी दो आंखों के बराबर मूल्य नहीं रखतीं।

इस दुनिया में दो-तीन अरब लोग हैं। चार-छः अरब आँखें हैं। एक अन्धे आदमी की दो आंखों का जो मूल्य है, वह छः अरब आंखों का नहीं है। मैं आपको यह कहना चाहूंगा। अपने भीतर श्रद्धा की जगह विवेक को जगाने के उपाय करने चाहिए, और विवेक को जगाने के क्या नियम हो सकते हैं उस सम्बन्ध में थोड़ी सी बात आपसे कहूं।

पहली बात, जन्म के साथ प्रत्येक मनुष्य को दुर्भाग्य से किसी-न-किसी धर्म में पैदा होने का मौका मिलता है। जन्म के साथ हर मनुष्य को दुर्भाग्य से किसी-न-किसी धर्म में पैदा होने का मौका मिलता है! दुनिया अच्छी होगी। तो हम यह दुर्भाग्य कम कर सकेंगे! लेकिन अभी यह है, और तब परिणाम यह होता है कि जगत में विवेक का कोई जागरण नहीं होता। बाल मन होता है।

चुपचाप चीजें स्वीकार कर लेने की मनःस्थिति होती है। तब सारे धर्मों के सत्य उसके मन में प्रवेश करा दिये जाते हैं। तब उसके मन में सारी बातें डाल दी जाती हैं। वह उनपर श्रद्धा करने लगता है।

मैं एक गांव में गया तो वहां एक अनाथालय मैं देखने गया। वहां कोई पचास बच्चे थे। उस अनाथालय के संयोजक ने मुझे कहा कि इनको हम धार्मिक शिक्षा भी देते। मुझे यह समझकर कि मैं साधु जैसा हूं। उसने सोचा कि ये खुश होंगे कि मैं इनको धर्म की शिक्षा देता हूं। मैंने उनसे कहा, इससे बुरा काम दूसरा नहीं है दुनिया में। क्योंकि धर्म की शिक्षा आप क्या देंगे? धर्म की कोई शिक्षा होती है? धर्म की साधना होती है। शिक्षा नहीं होती है।

अभी मैं सुन रहा हूं कि एक बहुत बड़े वैज्ञानिक ने अमरीका में एक संस्था खोली है, जहां वे प्रेम की शिक्षा देते हैं। यह तो बड़ी बेवकूफी की बात है। यह तो बड़ी मूर्खतापूर्ण बात है। उस संस्था से जो लोग प्रेम की शिक्षा लेकर निकलेगें, इस जगत में वे प्रेम कभी न कर पायेंगे—स्मरण रखें। कैसे प्रेम करेंगे? वे जब भी प्रेम करेंगे तभी शिक्षा बीच में आ जायेगी। अगर उनके भीतर प्रेम उठेगा तब उनके सिखाये हुए ढंग बीच में आ जायेंगे और वे अभिनय करने लगेंगे, प्रेम नहीं कर सकेंगे। जब भी उनके हृदय में कुछ कहने को होगा तब वे उन किताबों से कहेंगे—जिनमें लिखा हुआ है कि प्रेम की बातें कैसे कहनी चाहिए? और तब वैसा आदमी जो प्रेम में शिक्षित हुआ है प्रेम से वंचित हो जायेगा, और यह मैं कहता हूं, जो धर्म में शिक्षित होगा वह धर्म से वंचित हो जायेगा क्योंकि धर्म तो प्रेम से भी बड़ा गूढ़ है। बड़े रहस्य की चीज है। प्रेम को तो कोई सीख भी ले। धर्म को कैसे सीख सकेगा? धर्म की कोई

लर्निंग नहीं होती। यह कोई गणित थोड़ी है। फिजिक्स थोड़ी है, कोई भूगोल थोड़ा है कि आपने समझा दिया और लोगों ने याद कर लिया और परीक्षा दे दी। धर्म की कोई परीक्षा हो सकती है? अगर धर्म की परीक्षा नहीं हो सकती तो शिक्षा भी नहीं हो सकती। जिस चीज की भी परीक्षा हो सके उसकी ही शिक्षा हो सकती है।

तो मैंने उनको कहा, आप बड़ा बुरा कर रहे हैं। उन बच्चों को मन में बड़ा नुकसान पहुंचा रहे हैं। क्या शिक्षा देते होगें? वे बोले आप क्या कहते हैं, अगर धर्म की शिक्षा न होगी तो लोग जल्दी बिगड़ जायेंगे। मैंने कहा, दुनियां में इतनी धर्म की शिक्षा है। लोग बने हुए दिखायी पड़ रहे हैं? दुनियां में इतनी धर्म की शिक्षा—जितनी बाइबिल बिकती है कोई किताब नहीं बिकती, जितनी गीता पढ़ी जाती है, कोई किताब नहीं पढ़ी जाती। जितने रामायण के पाठ होते हैं, कौन सी किताब के होते होगें? कितने संन्यासी हैं, कितने साधू हैं? एक-एक धर्म के कितने प्रचारक हैं। कैथलिक ईसाइयों के प्रचारकों की संख्या ग्यारह लाख है और इसी तरह सारी दुनियां के धर्म प्रचारकों की संख्या है। यह इतना प्रचार, इतनी शिक्षा, इसके बाद आदमी कोई बना हुआ तो मालूम नहीं होता। इससे बिगड़ी शकल और क्या होगी जो आदमी की आज है।

तो मैं आपसे यह कहना चाहता हूं कि धर्म-शिक्षा से आदमी नहीं ठीक होगा। मैंने उनको कहा, यह गलत बात है। फिर मैं समझूं, आप क्या शिक्षा देते हैं। उन्होंने कहा, इनसे कोई भी प्रश्न पूछिये ये, हर प्रश्न का उत्तर देंगे। मैंने कहा, यही दुर्भाग्य है। सारी दुनियां में किसी से भी पूछिये, ईश्वर है? कह देगा है। यही खतरा

है। जिनको कोई पता नहीं है वे कहते हैं, है, और इसका परिणाम यह होगा कि वह धीरे-धीरे अपने इस उत्तर का खुद विश्वास कर लेंगे, कि ईश्वर है, और तब इनकी खोज समाप्त हो जायेगी। मैंने इन बच्चों को पूछा, आत्मा है ? वे सारे बच्चे बोले, 'है'। उन से पुन: मैंने पूछा आत्मा कहां है ? उन सबने अपने हृदय पर हाथ रखा और कहा, यहां। मैंने एक छोटे से बच्चे से पूछा, हृदय कहां है ? वह बोला, यह हमें सिखाया नहीं गया। यह हमें बताया नहीं गया। मैं उन संयोजक को कहता था कि ये बच्चे जब बड़े हो जायेगें तो यही बातें दोहराते रहेगें, और जब भी प्रश्न उठेगा, आत्मा है ? तो यांत्रिक, मैकेनिकल रूप से इनके हाथ भीतर चले जायेंगे। ये कहेंगे, यहां। यह बिल्कुल झूठा हाथ होगा। यह सीखे की वजह से चला जायेगा।

आपके जितने उत्तर हैं परमात्मा के सम्बन्ध में, धर्म के सम्बन्ध में, वह सब सीखे हुए हैं। विवेक जागरण के लिए पहली शर्त है, जो भी सीखा हो सत्य के सम्बन्ध में, उसे कचरे की भांति बाहर फेंक दें। जो आपके मां बाप ने, आपकी शिक्षा ने, आपकी परम्परा ने सिखाया हो उसे कचरे की भांति बाहर फेंक देना। धर्म इतनी ओछी बात नहीं है कि कोई सिखा सके। उसमें आपके मां बाप का, आपकी परम्परा का मैं अपमान नहीं कर रहा हूं। उसमें मैं धर्म की प्रतिष्ठा कर रहा हूं। स्मरण रखें, मैं यह नहीं कह रहा हूं कि परम्परा बुरी बात है। मैं यह कह रहा हूं कि धर्म इतनी बड़ी बात है कि परम्परा नहीं सिखा सकती। मैं यह कह रहा हूं कि धर्म इतनी बड़ी बात है कि कोई मां बाप नहीं सिखा सकते। मैं यह कह रहा हूं कि धर्म इतनी बड़ी बात है कि कोई पाठशाला नहीं सिखा सकती। जो

लोग समझते हैं कि सिखाया जा सकता है धर्म। उनको धर्म की महिमा का पता नहीं है।

पहली बात है, जिज्ञासा। स्वतन्त्र जिज्ञासा। और जो सिखाया गया है उसे कचरे की भांति फेंक देने की जरूरत है इसके लिए साहस चाहिए। अपने वस्त्र छोड़कर नग्न हो जाने के लिए उतने साहस की जरूरत नहीं है जितने साहस की जरूरत उन मन के वस्त्रों को छोड़ने के लिए है जो परम्परा आपको सिखा देती है, और उन ढांचों को तोड़ने के लिए जो समाज आपको दे देता है। हम सबके मन बंधे हुए हैं एक ढांचे में, और उस ढांचे में जो बंधा है वह सत्य की उड़ान को नहीं ले सकेगा। इसके पहले कि कोई सत्य की तरफ अग्रसर हो, उसे सारे ढांचे तोड़कर मिटा देने होगें। मनुष्य ने जितने भी विचार परमात्मा के सम्बन्ध में सिखायें हैं, उसे उन्हें छोड़ देना होगा।

एक रात को कुछ शराबी एक नदी पर गये हुए थे। उन्होंने सोचा कि पूर्णिमा की रात है। नाव में बैठकर यात्रा करें। वे नाव में बैठे। उन्होंने पतवार चलाई और उन्होंने समझा कि नाव चलना शुरू हो गई है। वे रात भर नाव चलाते रहे। उन्होंने सोचा कि बड़ी यात्रा हो गयी। सुबह जब ठण्डी हवाएं चलने लगीं और उनका नशा थोड़ा उतरा तो उनमें से एक ने कहा हम देखें तो, कितनी दूर निकल आये ? अब वापस लौटें। वे घाट पर उतरे और उन्होंने देखा कि अरे, रात भर मेहनत व्यर्थ गयी। वे नाव को छोड़ना भूल गये थे। वह नाव वहीं खूंटे से बंधी हुई थी। चलाई उन्होंने रात भर और समझा कि यात्रा हो रही है लेकिन नाव को खूंटे से छोड़ना भूल गये थे।

जो लोग जिन्होंने अपनी आत्मा की नाव को सत्य या परमात्मा की तरफ लगाया हो, अगर उन्होंने परम्परा और समाज के खूंटे से अपने को नहीं छोड़ा तो एक दिन वे पायेंगे कि नाव वहीं खड़ी है। एक दिन जब वे तट पर उतर कर देखेंगे तो पायेंगे जीवन व्यर्थ गया। हमने पतवार तो बहुत खेयी। लेकिन नाव एक इंच भी आगे न जा सकी। नाव को गतिमान करने के लिए पतवार चलाना ही काफी नहीं, छोड़ना भी जरूरी है।

इसके पहले कि आप सत्य की तरफ चलें। आप अपने को छोड़ें जो छोड़ना भूल जायेगा उसका चलना सार्थक नहीं होगा। आपने कहीं अपने को छोड़ा है क्या ? मैं तो हैरान हूं। सत्य की तरफ जो लोग उत्सुक होते हैं वह एकदम से बांधने लगते हैं, छोड़ने की बजाय। अगर वह जैन हैं तो और ज्यादा जैन होने लगते हैं। अगर वह हिन्दू हैं तो और ज्यादा हिन्दू होने लगते हैं। अगर मुसलमान हैं तो और ज्यादा मुसलमान होने लगते हैं। वह उस खूंटे पर और जंजीर को और गहरा करने लगते हैं। सत्य की तरफ जिन्हें जाना है, उन्हें हिन्दू होने का मौका कहां है ? जिसे सत्य की तरफ जाना है वह जैन कैसे हो सकता है ? जिसे परमात्मा में उत्सुकता है उसकी उत्सुकता मुसलमान में और ईसाइयत में कैसे हो सकती है ? और अगर ये उसकी उत्सुकताएं हैं तो ये तो खूंटे हैं, और ये उसकी नावों को आगे नहीं जाने देंगे।

विवेक जागरण के लिए पहली जरूरत है इन खूंटों से अपने को छोड़ लें, जिसमें समाज ने आपको बांध लिया है। समाज को जरूरत है बांधने के लिए। समाज को मुश्किल पड़ेगी अगर आप बंधे हुए न हों। समाज का सारा ढांचा दिक्कत में पड़ जायेगा अगर वह

आपको न बांधे। इसलिए समाज आपको बांधने की चेष्टा करता है। समाज की व्यवस्था, समाज की सुव्यवस्था, इस पर निर्भर है कि आप बंधे हों। हर आदमी खूंटे से बंधा हुआ हो। समाज व्यवस्थित होगा। समाज अपनी व्यवस्था के लिए आपका बलिदान चढ़ा देता है। समाज व्यक्तियों का बलिदान कर लेता है व्यवस्था के लिए। इसलिए जितना समाज व्यवस्थित होगा, व्यक्तियों का, उतना बलिदान करना जरूरी हो जायेगा। सोवियत रूस या हिटलर जैसे लोगों ने व्यक्तियों को समाप्त कर दिया है, क्योंकि समाज की पूरी व्यवस्था उनको करनी है। तो उन्होंने व्यक्तियों को बांधा नहीं, व्यक्तियों को खूंटे बना दिया अब उनके छूटने की गुंजाइश नहीं रखी। समाज की जरूरत है, कि व्यक्ति बिल्कुल मर जाय। वह बिल्कुल मशीन की तरह व्यवहार करो। समाज जो कहे उस तरफ जाये। समाज जो व्यवस्था दे उसको माने। समाज को सत्य से कोई मतलब नहीं है। समाज को तो सुव्यवस्था से मतलब है। इसलिए समाज को जरूरत है, वह आपको बांधेगा। लेकिन एक सीमा पर आपको अपनी जरूरत पड़ सकती है और आपको छोड़ना पड़ेगा। छोड़ने का मतलब यह नहीं है कि आप उच्छृंखल हो जायेंगे। छोड़ने का यह मतलब नहीं कि आप स्वच्छन्द हो जायेंगे। छोड़ने का मतलब यह नहीं है कि आप समाज विरोधी हो जायेंगे। छोड़ने का मतलब केवल इतना है कि आपके चित्त की भूमिका जंजीरों से बंधी नहीं रह जायेगी। आप किन्हीं धारणाओं में अपने को कैद नहीं करेंगे। किन्हीं कंसेप्ट में अपने को बांधेंगे नहीं और किन्हीं सम्प्रदायों को आप अज्ञान में स्वीकार नहीं करेंगे। आप खोज में संलग्न होंगे। आप आंतरिक जिज्ञासा के लोक में

प्रवेश करने में लगे होंगे। धीरे-धीरे वहां जितनी गति आपकी होगी और जो अनुभव आपको होंगे वे ही अनुभव आपके पथ के प्रदीप बनेंगे। वे ही अनुभव आपके लिए प्रकाश बनेंगे।

पहली जरूरत है, समाज ने जो ढांचे और संस्कार दिये हैं उनको कोई व्यक्ति क्षीण करे। उनको छोड़े मन से। लेकिन इतना ही काफी नहीं है। समाज के ढांचे क्षीण हो जायं तो मन उड़ने को मुक्त हो जाता है। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि उड़ान शुरू हो गयी। उड़ने की संभावना पैदा हो जाती है। समाज के ढांचे परम्परा, शास्त्र, सम्प्रदाय, उनके द्वारा प्रचारित संस्कार, उनको छोड़कर चेतना इतनी हल्की हो जाती है कि उड़ सकती है। फिर साथ दूसरी चेष्टा, अर्न्तदृष्टि के लिए करनी होती है। एक तो खूंटे से छोड़ देना, और फिर अन्तर्दृष्टि की पतवार चलानी होती है तब नाव में गति होती है।

अन्तर्दृष्टि की पतवार का क्या अर्थ है? अन्तर्दृष्टि की पतवार का अर्थ है कि चीजों को जैसे वे दिखायी पड़ती हैं उनको वैसे ही मत मान लेना। उनके भीतर बहुत कुछ है।

एक आदमी मर जाता है। हमने कहा, आदमी मर गया है। जो आदमी इस बात को यहीं समझ कर चुप हो गया, उसके पास अन्तर्दृष्टि नहीं है।

गौतम बुद्ध एक महोत्सव में भाग लेने जाते थे। रास्ते में रथ पर उनका सारथी था और वे थे। उन्होंने एक बूढ़े आदमी को देखा। उन्होंने पहला बूढ़ा देखा। जब गौतम बुद्ध का जन्म हुआ तो ज्योतिषियों ने उनके पिता को कहा कि यह व्यक्ति बड़ा होकर या तो चक्रवर्ती सम्राट होगा और या संन्यासी हो जायेगा। उनके

पिता ने पूछा कि मैं इसे संयासी होने से कैसे रोक सकता हूं, तो उस ज्योतिषी ने बहुत अद्भुत बात कहीं थी। वह बात समझने जैसी है। उस ज्योतिषी ने कहा, अगर इसे संन्यासी होने से रोकना है, तो इसे ऐसे मौके मत देना जिससे अन्तर्दृष्टि पैदा हो जाय। पिता बहुत हैरान हुए। यह क्या बात हुई? उनके पिता ने पूछा। ज्योतिषी ने कहा, इनको ऐसे मौके मत देना कि इसको अन्तर्दृष्टि पैदा हो जाय। तो पिता ने कहा, यह तो बड़ा मुश्किल हुआ, क्या करेंगे? तो उस ज्योतिषी ने कहा कि इसकी बगिया में फूल कुम्हलाने के पहले अलग कर देना। यह कभी कुम्हलाया हुआ फुल न देख सके। क्योंकि यह कुम्हलाया हुआ फूल देखते ही पूछेगा क्या फूल कुम्हला जाते हैं? और यह पूछेगा, क्या मनुष्य भी कुम्हला जाते हैं? और यह पूछेगा, क्या मैं भी कुम्हला जाऊंगा? और इसे अन्तर्दृष्टि पैदा हो जायेगी। इसके आस-पास बूढ़े लोगों को मत आने देना। अन्यथा यह पूछेगा, यह बूढ़े हो गये? और मैं भी बूढ़ा हो जाऊंगा? यह कभी मृत्यु को न देखे। पीले पत्ते गिरते हुए न देखे। अन्यथा यह पूछेगा, पीले पत्ते गिर जाते हैं? क्या मनुष्य भी एक दिन पीला होकर गिर जायेगा? क्या मैं गिर जाऊंगा? और तब इसमें अन्तर्दृष्टि पैदा हो जायेगी। पिता ने बड़ी चेष्टा की और उन्होंने ऐसी व्यवस्था की कि बुद्ध ने युवा होते-होते तक पीला पत्ता नहीं देखा, कुम्हलाया हुआ फूल नहीं देखा। बूढ़ा आदमी नहीं देखा। मरने की कोई खबर नहीं सुनी। लेकिन यह कबतक हो सकता था। इस दुनियां में किसी आदमी को कैसे रोका जा सकता है कि मृत्यु को न देखे? कैसे रोका जा सकता है कि पीले पत्ते न देखे? कैसे रोका जा सकता है कि

कुम्हलाये हुए फूल न देखे ? लेकिन मैं आपसे कहता हू, आपने अभी मरता हुआ आदमी नहीं देखा होगा और अभी आपने पीला पत्ता नहीं देखा। अभी आपने कुम्हलाया हुआ फूल नहीं देखा।

बुद्ध को उसके बाप ने रोका बहुत मुश्किल से। तब भी उस दिन उन्होंने देख लिया, और आपको कोई नहीं रोके हुए हैं और आप नहीं देख पाते। अर्न्तदृष्टि नहीं है। नहीं तो आप संन्यासीं हो जाते। सवाल यह है कि किसी ज्योतिषी ने कहा था कि अगर अर्न्तदृष्टि पैदा हुई तो यह संन्यासी हो जायेगा। तो जितने लोग संन्यासी नहीं हैं, मानना चाहिए उनमें अन्तर्दृष्टि नहीं होगी।

खैर, उस दिन बुद्ध को दिखायी पड़ गया। वह यात्रा पर गये महोत्सव में भाग लेने, और एक बूढ़ा आदमी दिखाई पड़ा। उन्होंने तत्क्षण अपने सारथी को पूछा कि इस मनुष्य को क्या हो गया है ? सारथी ने कहा, यह मनुष्य वृद्ध हो गया। बुद्ध ने पूछा, क्या हर मनुष्य वृद्ध हो जाता है ? तो सारथी ने कहा, हर मनुष्य वृद्ध हो जाता है। बुद्ध ने पूछा, क्या मैं भी ? तो सारथी ने कहा, भगवन, कैसे कहूं, लेकिन कोई भी अपवाद नहीं है। आप भी हो जायेंगे। बुद्ध ने कहा, रथ वापस लौटा लो- रथ को वापस ले लो। सारथी बोला, क्यों ? बुद्ध ने कहा, मैं बूढ़ा हो गया।

यह अर्न्तदृष्टि है। बुद्ध ने कहा, मैं बूढ़ा हो गया। अद्भुत बात कही। बहुत अद्भुत बात कही, और वे लौट नहीं पाये थे कि उन्होंने एक मृतक को देखा और पूछा, यह क्या हुआ ? तो सारथी ने कहा, यह बुढ़ापे के बाद का दूसरा चरण है। यह आदमी मर गया। बुद्ध ने पूछा, क्या हर आदमी मर जाता है ? सारथी ने कहा, हर आदमी, और बुद्ध ने पूछा, क्या मैं भी, ? और सारथी ने कहा,

आप भी। कोई भी अपवाद नहीं है। बुद्ध ने कहा, अब लौटाओ या न लौटाओ। सब बराबर है। सारथी ने कहा, क्यों ? बुद्ध ने कहा, मैं मर गया।

यह अन्तर्दृष्टि है। चीजों को उनके ओर छोर तक देख लेना। वे चीजें जैसी दिखायी पड़ें उनको वैसा स्वीकार न करना। उनके अन्तिम चरण तक। जिसको अन्तर्दृष्टि पैदा होगी, वह इस भवन की जगह खण्डहर भी देखेगा। जिसे अर्न्तदृष्टि होगी वह यहां इतने जिन्दा लोगों की जगह इतना मुर्दा लोग भी देखेगा। इन्हीं के बीच इन्हीं के साथ। जिसे अन्तर्दृष्टि होगी, वह जन्म के साथ मृत्यु को भी देख लेगा और सुख के साथ दुख को भी, और मिलन के साथ विछोह को भी। अर्न्तदृष्टि आर पार देखने की विधि है, और जिस व्यक्ति को सत्य जानना हो उसे आर पार देखना सीखना होगा। क्योंकि परमात्मा कहीं और नहीं है। जिसे आर पार देखना आ जाय उसे यहीं परमात्मा उपलब्ध हो जाता है। वह आर-पार देखने के माध्यम से हुआ दर्शन है।

एक बहुत बड़ा राजा हुआ। वह एक रात सोया हुआ था। वह बगदाद में हुआ। एक मुसलमान राजा था। वह अपने महल में सोया हुआ था। उसने अपने छप्पर पर किसी के चलने की आवाज सुनी। उसने सोचा, यह क्या पागलपन है। इतनी रात को महल के छप्पर पर कौन चल रहा है ? उसने चिल्ला कर पूछा, आधी रात है यह कौन ऊपर छत पर चढ़ रहा है ? कौन ऊपर छप्पर पर चल रहा है ? एक आदमी ने ऊपर से कहा, मेरा ऊँट खो गया है, उसे खोजता हूं। राजा हैरान हुआ। उसने कहा, पागल मालूम होते हो। ऊँट कहीं छप्परों पर खोते हैं। मकानों के छप्परों पर ऊँट खोते हैं ?

उस आदमी ने कहा कि अगर मकानों के छप्परों पर ऊँट नहीं खो सकते, और अगर मकानों के छप्परों पर ऊँट नहीं खोजे जा सकते, तो तुम जहां राजसिंहासन पर परमात्मा को खोज रहे हो - कभी सोचा, कि मकान पर तो ऊँट खो भी जायें, मिल भी जायें, राज सिंहासन पर परमात्मा नहीं मिलेगा।

राजा बहुत हैरान हुआ। उसने बहुत कोशिश की उस फकीर को, कौन आदमी था जिसने ऊपर से यह बात कही, खोजवाया जाय। उसने बहुत ढुंढवाया लेकिन उसका कहीं पता नहीं चला। दिन बीते, वह बात भूल गया। फिर एक दिन एक संन्यासी, एक फकीर दरबार में आया। वह इतना महिमा युक्त था इतना प्रभावी था कि संतरी उसे रोक न सके। उससे पूछ नहीं सके कि आप कैसे जाते हैं, और किसकी आज्ञा से? वह भीतर प्रविष्ट हुआ और दरबार में पहुंच गया। सारे दरबारी घबड़ाकर खड़े हो गये। खुद राजा भी खड़ा हो गया। लेकिन उसने सोचा, यह कौन है, यहां पर कैसे आये, क्या प्रयोजन है? उस फकीर ने कहा। इस सराय में कुछ दिन ठहरना चाहता हूं। राजा ने कहा, सराय? अशिष्ट बात बोल रहे हो। थोड़े शिष्टाचार का भी बोध नहीं? यह मेरा महल है। मेरा निवास है। वह फकीर जोर से हंसने लगा और बोला, इसके पहले भी मैं आया था, लेकिन तुमको नहीं पाया था। तब दूसरा आदमी सिंहासन पर था। उसके पहले भी आया था। तीसरा आदमी सिंहासन पर था। मैं कई दफा आया। हर दफा आदमी बदल जाते हैं। लेकिन क्षमा करें। मुझे ऐसा शक हुआ। वह सराय हैं यहां लोग आते हैं, और जाते हैं। और इसलिए मैंने कहा कि सराय में मुझे ठहरने का अवकाश मिल जाय, तो बड़ी

कृपा हो।

राजा ने उठकर उसके पैर पकड़ लिये और कहा कि निश्चित हो गया जिस आदमी को मैं खोजता था वह तुम्हीं हो सकते हो। क्या उस रात मेरे छप्पर पर ऊंट तुम्हीं खोजते थे? क्योंकि तुम्हारे सिवाय और कौन खोजेगा? वह फकीर बोला, मैं ही था, और आया था कि तुम्हें शायद अन्तर्दृष्टि पैदा हो जाय। और आज फिर आया हूं कि शायद अन्तर्दृष्टि पैदा हो जाय। तो उस राजा ने कहा बात समझ में आ गयी और उसने पीछे लौट कर नहीं देखा। वह महल के बाहर हो गया। उससे जब भी लोग पूछते, ऐसा तुमने इतना जल्दी क्यों किया? उसने कहा, अन्तर्दृष्टि जब पैदा होती है तो जल्दी और देर का कोई सवाल नहीं होता।

आर पार देखने की जरूरत हो तो मकान सराय दिखायी पड़ेगा और आप चलते-फिरते मुर्दे मालूम होंगे। खुद अपने को मुर्दे मालूम होंगे। क्योंकि जो चीज मर जाती है। वह आज भी मरी होनी चाहिए। जो चीज मर जानी है वह हमेशा मर रही है, धीरे-धीरे। मैं जिस दिन पैदा हुआ उसी दिन से मर रहा हूं। एक दिन मरने की प्रक्रिया पूरी हो जायेगी। मैं समाप्त हो जाऊंगा। उसे लोग मृत्यु कहेंगे, लेकिनजो देखता है वह जान रहा है कि मैं प्रतिक्षण मर रहा हूं। नहीं मृत्यु घटित कैसे होगी? मरने का क्रमिक विकास, ग्रेज्युअल ग्रोथ, वह जो रोज बढ़ती हो रही है मृत्यु की, एक दिन मरण हो जायेगा। हम यहां बैठे जितने लोग हैं। मर रहे हैं यहां हम घण्टे भर मर गये। घण्टा पर गया। हमारे भीतर। जो जीवन में उसे पार देखेगा उसे अनेक बातें दिखायी पड़नी शुरू होंगी।

जिज्ञासा मुक्त हो और अन्तर्दृष्टि की तलाश रहे, और किसी

चीज को हम जैसी वह दिखायी पड़ती हो, उसका चेहरा जैसा मालूम पड़ता हो वैसा ही स्वीकार न कर लें। उसके भीतर प्रवेश करें और देखें, तो यह सारा जगत संन्यास का उपदेश बन जाता है। यह सारा जगत परित्याग का उपदेश बन जाता है। यह सारा जगत धर्म का शिक्षालय हो जाता है। जो आर-पार देखने में समर्थ हो जाता है। जिसकी शिक्षा, जिसकी जीवन शिक्षा और अनुशासन आर-पार देखने में समर्थ हो जाता है वह व्यक्ति घटनाओं के पीछे उसको देखने लगता है जिस पर कोई घटना नहीं घटती। वह व्यक्ति परिवर्तन के पीछे उसको अनुभव करने लगता है जिसमें कोई परिर्वतन नहीं होता। वह व्यक्ति जड़ता के पीछे उसको देखने लगता है, जो चैतन्य है। उस व्यक्ति को जैसी-जैसी क्षमता गहरी होती जाती है वह अनित्य के पीछे नित्य को और सामीप्य के पीछे शाश्वत का दर्शन करने जगता है। जब उसे सारे तथ्यों के पीछे वह शाश्वत मिल जाता है। वह सनातन मिल जाता है। जिसके पार देखना असम्भव है। उस बिन्दु का नाम ईश्वर है। जिसके पार देखना असम्भव है। जिसके पार देखा जा सकता है उसका नाम संसार है और जिसके पार नहीं देखा जा सकता है उसका नाम सत्य है।

जहां तक हमारी दृष्टि प्रवेश कर सकती है, जहां तक दृष्टि को गति हो वहां तक संसार है, और जहां दृष्टि की अगति हो जाती है, जहां दृष्टि आगे जा ही नहीं सकती। अंतिम क्षण आ जाता है। अंतिम बिन्दु आ जाता है। जिसके पार दृष्टि शून्य हो जाती है, जिसके पार देखने को कुछ रह नहीं जाता उस जगह का नाम सत्य है। उस जगह का नाम परमात्मा है। उसे जो मन्दिर

में खोज रहा है वह नासमझ है। मन्दिर के तो पार देखा जा सकता है। वह तो संसार का हिस्सा है। जो उसे शास्त्र में खोज रहा है वह ना समझ है। शास्त्र के तो पार देखा जा सकता है। शास्त्र तो पदार्थ का हिस्सा है।

परमात्मा को तो वहां खोजना होगा जिसके पार नहीं देखा जा सकता। कौन सी चीज है ऐसी जिसके पार आप नहीं देख सकते? अगर आप अपने भीतर प्रविष्ट होंगे तो आपके सिवाय ऐसी कोई चीज नहीं है जिसके पार आप नहीं देख सकते। हर चीज के पार देखा जा सकता है, सिवाय आपको छोड़कर। जब आप भीतर प्रविष्ट होंगे तो आपको अपने ही भीतर एक बिन्दु उपलब्ध होगा जिसके आर-पार कहीं नहीं देखा जा सकता है। वह दृष्टा का बिन्दु है। जो देख रहा है उसको ही केवल देखा नहीं जा सकता। जो देख रहा हो इस जगत में, उसको ही केवल देखा नहीं जा सकता। उस बिन्दु पर स्थिर होकर व्यक्ति सत्य का अनुभव करता है। परमात्मा का अनुभव करता है, और उस दिन जो प्रकाश उसमें उत्पन्न होता है। उस दिन जो अनुभूति उसे स्पष्ट होती है। उस दिन दिखायी पड़ता है। उस दिन जो प्रतीति में आता है, वह उसके सारे जीवन को बदल देता है। उसके बाद मृत्यु नहीं रह जाती क्योंकि उसे जानकर वह जानता है कि अमृत है। उसके बाद कोई दुख नहीं रह सकता। जिसे जानकर वह जानता है कि सब आनन्द है। उसके बाद यह सारा जगत सच्चिदानन्द रूप में परिणत हो जाता है। ऐसी परिणति को साहसी उपलब्ध होते हैं। ऐसी परिणति को दुर्दम्य साहसी उपलब्ध होते हैं। दुस्साहसी उपलब्ध होते हैं। जो सब छोड़कर अनन्त के सागर

में अपनी नाव को खेते हैं। जो सारे खूंटे तोड़कर अज्ञात सागर में अपने को छोड़ देते हैं अनजान—कहां जायं, कुछ पता नहीं ? जिन्हें 'पता' का मोह है वे सत्य को नहीं पा सकते। जिन्हें मंझधार में डूब जाने का साहस है। जिन्हें किनारों का कोई मोह नहीं है। जो मंझधार को ही किनारा मान सकते हैं। जो बीच सागर को भी सहारा मान सकते हैं, केवल उनके लिए ही सत्य की खोज है।

ईश्वर ऐसा साहस पैदा करे। ईश्वर ऐसी हिम्मत दें। ईश्वर ऐसा दुर्गम बोध, अन्तर्दृष्टि, ऐसी जिज्ञासा उत्पन्न करे तो हम सारी दुनियां में फिर से धर्म को प्रतिष्ठित करने में समर्थ हो जायेंगे। जो धर्म वीरों का था वह वृद्धों का बना हुआ है। जो धर्म साहसियों का था वह आलसियों का बना हुआ है। जिस धर्म पर केवल वे ही चलते थे जो पर्वतों में अपने को अकेले खो देने का साहस रखते हैं। जिन्हें मृत्यु का कोई प्रश्न नहीं। वह उनका बना हुआ है जो मृत्यु से बहुत भयभीत हैं। बहुत डरे हुए हैं, और वे धर्म में अपना बचाव खोजते हैं। धर्म कोई सुरक्षा नहीं हैं। धर्म कोई बचाव नहीं हैं। धर्म को इस अर्थी में शरण मत समझना। धर्म तो आक्रमण है, और जो लोग आक्रमण करते हैं सत्य पर। जो उसे विजय करते हैं वे ही केवल उसे उपलब्ध होते हैं। ईश्वर ऐसी सद्बुद्धि दे, ऐसा साहस दे, ऐसी हिम्मत दे कि अनन्त सागर में आप अपनी नाव को छोड़ सकें। तो किसी दिन, किसी क्षण, किसी सौभाग्य के क्षण में कोई अनुभूति आपके जीवन को उपलब्ध होगी। वह आपको परिपूर्ण बदल देगी। वह आपकी सारी दृष्टि को बदल देगी। संसार तो यही होगा, लेकिन आप बदल जायेंगे। सब कुछ यही होगा, लेकिन आप दूसरे हो जायेंगे।

उस दूसरे 'हो जाने' का नाम संन्यासी है। संन्यासी का अर्थ यह नहीं है कि किसी ने कपड़े बदले और वह भीख मांगने लगा, तो संन्यासी हो गया। किसी ने टीके लगाये, और किसी ने कपड़े रंग लिये तो वह संन्यासी हो गया, और कोई घर में रहा तो वह गृहस्थ हो गया। संन्यासी का यह अर्थ नहीं है। सत्य के अनुसंधान में इतने साहस को लेकर जो कूद पड़ता है वही संन्यासी है, और जिसके 'घरघूले' हैं, और जिसके खूंटे हैं, और जो अपने घर के बाहर नहीं निकलता, वही गृही है। वही गृहस्थ है। कोई पत्नी और बच्चों की दुनियां में गृहस्थ नहीं होता, और न कोई पत्नी बच्चों के न होने से संन्यासी होता है, और न कोई कपड़ों के परिवर्तन से गृहस्थ होता है, न कोई संन्यासी होता है। अगर यह छोटी और ओछी बातों से दुनियां में संन्यास होता हो तो उसका मूल्य दो कौड़ी हो जायेगा। उसका कोई मूल्य नहीं रह जायेगा। संन्यास तो बड़ी आन्तरिक परिवर्तनकी, इनर ट्रांसफार्मेशनकी बात है, और यह परिवर्तन आंतरिक जीवनकी दिशाको बदलनेसे शुरू होताहै।

उस दिशा के दो चरणों की मैंने आप से बात की है। एक चरण है, जिज्ञासा को स्वतन्त्र और उन्मुक्त कर देना। आस्थाओं, श्रद्धाओं के खूंटों से उसे अलग कर देना, और दूसरी बात है तथ्यों के आरपार देखना। जो तथ्यों के आरपार देखता है, वह सत्य को उपलब्ध होता है।

इन थोड़ी सी बातों को आपने बड़े प्रेम से और बड़ी शान्ति से सुना है उसके लिए मैं बहुत अनुगृहीत हूं। ईश्वर की आप पर अनुकम्पा उपलब्ध हो तो उसका प्रसाद आपको मिले। इसके लिए कामना करता हूं, और पुनः धन्यवाद देता हूं।

मेरा प्रणाम स्वीकार करें।

२. अमृत-दृष्टि

मेरे प्रिय आत्मन,

आज की संध्या में आपके बीच उपस्थित होकर बहुत आनंदित हूं। एक छोटी सी कहानी से आज की चर्चा को मैं प्रारम्भ करुंगा।

बहुत वर्ष हुए, एक साधू मरण-शैया पर था। उसकी मृत्यु निकट थी और उससे प्रेम करने वाले लोग उसके पास इकट्ठे हो गये थे। उस साधु की उम्र सौ वर्ष थी और पिछले पचास वर्षों से सैंकड़ों लोगों ने उससे प्रार्थनायें कीं कि उसे जो अनुभव हुए हों वह एक शास्त्र में, एक किताब में लिख दे। हजारों लोगों ने उससे यह निवेदन किया था कि वह अपने आध्यात्मिक अनुभवों को, परमात्मा के सम्बन्ध में,, सत्य के सम्बन्ध में, उसे जो प्रतीतियां हुई हों, उन्हें एक ग्रन्थ में लिख दे। लेकिन वह हमेशा इन्कार करता रहा था, और आज सुबह उसने यह घोषणा की थी कि मैंने वह किताब लिख दी है, जिसकी मुझसे हमेशा मांग की गयी थी। और आज मैं अपने

प्रधान शिष्य को उस किताब को भेंट कर दूंगा।

हजारों लोग उत्सुक होकर बैठे थे कि वह किताब भेंट की जायेगी वह किताब भेंट की जायेगी जो कि मनुष्य जाति के लिए हमेशा के लिए काम की होगी। उसने एक किताब अपने प्रधान शिष्य को भेंट की, और उससे कहा, इसे सम्हाल कर रखना। इससे बहुमूल्य शास्त्र कभी भी लिखा नहीं गया है। इससे महत्वपूर्ण कभी कोई किताब नहीं लिखी गयी, और जो लोग सत्य की खोज में होंगे उनके लिए यह मार्गदर्शक प्रदीप सिद्ध होगी। इसे बहुत सम्हाल कर रखना। इसे मैंने पूरे जीवन के अनुभव से लिखा है। उसने वह किताब अपने शिष्य को दी, और सारे लोगों ने धन्यवाद में सिर झुकाये। लेकिन उस शिष्य ने क्या किया, सर्दी के दिन थे, और वहां आग जलती थी, उसने उस किताब को आग में डाल दिया। आग ने उस किताब को पकड़ लिया, और वह राख हो गयी। सारे लोग हैरान हो गये, कि यह क्या किया ? लेकिन लोग देखकर हैरान हुए वह मरता हुआ साधु अत्यन्त प्रसन्न था। उसने उठकर उस शिष्य को गले से लगा लिया, और कहा कि अगर तुम किताब को बचाकर रख लेते तो मैं बहुत दुखी मरता, क्योंकि मैं समझता कि एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं है मेरे पास, जो यह जानता हो कि सत्य शास्त्रों में उपलब्ध नहीं हो सकता, तुमने किताब को आग में डाल दिया इससे मैं प्रसन्न हूं। कम से कम एक व्यक्ति मेरी बात को समझता है। यह बात, कि सत्य शास्त्रों में उपलब्ध नहीं हो सकता, कम से कम एक के अनुभव में है।

और उसने कहा, यह भी स्मरण रखो, कि अगर मेरी किताब को आग में न डालते और मेरे मरने के बाद देखते तो बहुत हैरान

हो जाते। उसमें कुछ लिखा हुआ नहीं था, वह कोरे कागज थे।

और मैं आपको कहूंगा कि आज तक धर्म ग्रन्थों में कुछ भी लिखा हुआ नहीं है। वे सब कोरे कागज हैं। जो लोग उनमें कुछ पढ़ लेते हैं वे गलती में पड़ जाते हैं। जो गीता में कुछ पढ़ लेगा, या कुरान में कुछ पढ़ लेगा या बाइबिल में कुछ पढ़ लेगा वह गलती में पड़ जायेगा।

स्मरण रखें, वहां शास्त्रों में कुछ भी लिखा हुआ नहीं है, और जो आप पढ़ रहे हो, वह आप 'अपने' को पढ़ रहे हो। उन शास्त्रों को नहीं, और तब जिन सम्प्रदायों को आप खड़े कर लेते हैं और सत्य के जिन पंथों को आप निर्मित कर लेते हैं वह क्राइस्ट और कृष्ण के बनाये हुए नहीं हैं। बुद्ध और महावीर के बनाये हुए नहीं हैं। वह आपके निर्माण हैं। वह आपकी बुद्धि और विचार से उप्पन्न हुए हैं। इन सारे पंथों का निर्माण, सारे पंथों का जन्म आपसे हुआ है। जिन्होंने सत्य को जाना है उनसे नहीं हुआ है। क्योंकि जो सत्य को जानता है वह किसी सम्प्रदाय को जन्म कैसे दे सकता है? और जो सत्य को जानता है वह मनुष्य के भीतर विभाजन की रेखायें कैसे खड़ी कर सकता है? और जिसने सत्य को जाना हो उसके लिए तो सारे भेद और सारी दीवालें गिर जाती हैं। लेकिन सत्य के नाम पर खड़े हुए ये सम्प्रदाय तो दीवालों को और भेदों को खड़े किये हुए है। ये सारे भेद मेरे और आपके निर्मित किये हुए हैं।

आज की संध्या मैं आपसे यह कहना चाहूंगा कि जो व्यक्ति सत्य की खोज करना चाहता हो—और ऐसा कोई भी व्यक्ति जमीन पर खोजना मुश्किल है जो किसी न किसी रूप में सत्य की खोज में न लगा हो। उस व्यक्ति को इन सारे शास्त्रों को, इन सारे सम्प्रदायों को

इन सारे विचार के पंथों को छोड़ देना होगा। इन्हें छोड़कर ही कोई सत्य के आकाश में गति कर सकता है। जो इनसे दबा है। इनके भार से दबा है, जिसके ऊपर इतना बोझ है, वह पर्वत पर नहीं चढ़ सकेगा। वहइतना भारी है कि उसका ऊपर उठना असंभव है। सत्य को पाने के लिए निर्भार होना जरुरी है। सत्य को पाने के लिए निर्भार होने की अत्यंत आवश्यकता है। जो लोग भारग्रस्त हैं, वे लोग सत्य की ऊंचाइयों पर नहीं उठ सकेंगे। उनके पंख छूट जायेंगे और वे नीचे गिर जायेंगे।

हम यदि उत्सुक हैं, और यदि हम चाहते हैं कि सत्य का कोई अनुभव हो, और मैं आपको यह कहूं कि जो व्यक्ति सत्य के अनुभव को उपलब्ध नहीं होगा उसके जीवन में न तो संगीत होता है, न उसके जीवन में शांति होती है, न उसके जीवन में कोई आनन्द होता है। यह इतने लोग दिखाई पड़ते हैं—अभी रास्ते से मैं आया, और हजारों रास्ते से निकलना हुआ है। लाखों लोगों के चेहरे दिखायी पड़ते हैं लेकिन कोई चेहरा ऐसा दिखायी नहीं पड़ता कि उसके भीतर संगीत का अनुमान हो। कोई आंख ऐसी दिखायी नहीं पड़ती कि जिसके भीतर कोई शांति हो। कोई भाव ऐसे प्रदर्शित नहीं होते कि भीतर आलोक का और प्रकाश का अनुभव हुआ हो। हम जीते हैं—इस जीवन में कोई आनन्द, इस जीवन में कोई शान्ति और संगीत का अनुभव नहीं होता।

सारी दुनिया इस तरह की विसंगति से भर गयी है, सारी दुनिया के लोग ऐसी पीड़ा और संताप से भर गये हैं कि उन्हें ऐसा प्रतीत होने लगा है कि जो ज्यादा विचारशील हैं उन्हें दिखायी पड़ता है कि इस जीवन का तो कोई अर्थ नहीं है, इससे तो मर जाना

बेहतर है, और बहुत से लोगों ने पिछले पचास वर्षों में, बहुत विचारशील लोगों ने आत्महत्या की है। वे लोग नासमझ नहीं थे। जिन्होंने अपने आपको समाप्त किया।

जीवन की यह जो स्थिति है। आज जीवन ही यह जो परिणति है, आज जीवन का यह जो दुःख और पीड़ा है, इसे देखकर कोई भी अपने को समाप्त कर लेना चाहेगा। ऐसी स्थिति में केवल नासमझ ही जी सकते हैं। ऐसे पीड़ा और तनाव तो केवल अज्ञानी झेल सकते हैं। जिसे थोड़ा भी बोध होगा वह अपने को समाप्त कर लेना चाहेगा। इसका तो अर्थ यह हुआ कि जिनको बोध होगा वह आत्महत्या कर लेंगे।

लेकिन महावीर और बुद्ध ने आत्महत्या नहीं की है, और क्राइस्ट ने आत्महत्या नहीं की है। कन्फ्यूशस और लाओत्से ने आत्महत्या नहीं की है। दुनिया में ऐसे लोग हुए हैं जिन्होंने आत्महत्या के अतिरिक्त एक और मार्ग सोचा और जाना। मनुष्य के सामने दो विकल्प हैं—या तो आत्महत्या या आत्मसाधना है। जो व्यक्ति इन दोनों में से कोई विकल्प नहीं चुनता उसे जानना चाहिए कि वह एक व्यर्थ के बोझ को ढो रहा है। वह जीवन को अनुभव नहीं कर पायेगा। वह करीब-करीब मृत है। उसे जीवित भी नहीं कहा जा सकता।

क्राइस्ट के जीवन में एक उल्लेख है। वह एक गांव से गुजरते थे। एक मछुवे को उन्होंने मछलियां मारते देखा। वे उसके पीछे गये और उसके कन्धे पर हाथ रखा। उन्होंने उस मछुवे से कहा, तुम कब तक मछलियां मारने में जीवन गंवाते रहोगे? मछलियां मारने के अलावा भी कुछ और है? क्राइस्ट हमारे कन्धे पर भी हाथ रख

कर यही पूछ रहे हैं, कि हम कब तक मछलियां मारते रहेंगे? मछलियां मारने के अलावा कुछ और भी है। उन्होंने उस मछुवे से पूछा कि कब तक मछलियां मारते रहोगे? उसने आकर देखा उनकी आंखों में, और उसे प्रतीत हुआ कि जीवन में मछलियां मारने से ज्यादा भी कुछ पाया जा सकता है। उसकी गवाही क्राइस्ट की आंखें थीं। उसने कहा, मैं तैयार हूं। जिस रास्ते से आप ले चलना चाहेंगे, मैं चलूंगा। क्राइस्ट ने कहा, मेरे पीछे आओ। उसने जाल को वहीं फेंक दिया और क्राइस्ट के पीछे गया। वह गांव के बाहर भी नहीं निकल पाया था कि किसी ने आकर खबर दी कि तुम्हारा पिता जो बीमार था उसकी अभी-अभी मृत्यु हो गई है। तुम घर लौट चलो। उसका अन्तिम संस्कार कर, फिर जहां चाहो चले जाना। उस व्यक्ति ने, उस मछुवे ने, क्राइस्ट को कहा कि मैं जाऊं, और अपने पिता की अन्त्येष्टि कर आऊं, फिर मैं लौट आऊंगा। क्राइस्ट ने एक अद्‌भुत बात कही। उन्होंने कहा, 'लेट दी डैड बरी देयर डैड।' उन्होंने कहा मुर्दों को मुर्दा दफना लेने दो। तुम मेरे पीछे आओ।

यह वचन बहुत अद्‌भुत है। उन्होंने कहा कि मुर्दे 'मुर्दे' को दफना लेंगे। तुम मेरे पीछे आओ। हम सबकी गिनती उन्होंने मुर्दों में की है। और इस सारी जमीन पर बहुत कम लोग जीवित हैं। अधिक लोग मुर्दे हैं। तीन अरब लोग हैं। इनमें अधिक लोग मुर्दे हैं। मुश्किल से कोई आदमी जीवित है।

यह क्यों कहा हूं आपसे, कि हम मुर्दे हैं? हम तब तक मुर्दे ही हैं, तब तक हम मरे हुए लोग हैं, जो किसी भांति जी रहे हैं, हम लाशों की भांति हैं जो चल रहे हैं। हम तब तक लाशों की भांति होंगे, जब तक हमें वास्तविक जीवन का पता न चल जाय। वह

व्यक्ति जीवित कैसे हो सकता है जिसे जीवन के मूल स्रोत का कोई पता न हो ? वह व्यक्ति जीवित कैसे पाया जा सकता है जिसे अपने भीतर जो जीवन की धारा बह रही है, उसमें जिसकी कोई प्रतिष्ठा न हो। वह व्यक्ति जीवित कैसे हो सकता है या कैसे जीवित कहा जा सकता है जिसे उस तत्व का पता न हो जिसकी कोई मृत्यु नहीं होती है। मेरे भीतर, आपके भीतर, सबके भीतर वह तत्व भी मौजूद है, जिसकी कोई मृत्यु नहीं होती हमारे भीतर दोहरे तरह का व्यक्तित्व है--एक जो मर जायेगा और एक जो शेष रहेगा। जो व्यक्ति अपने को इतना ही मानते हों मरण पर उनकी समाप्ति हो जाती है वे जीवित नहीं हो सकते। वे जीवित नहीं कहे जा सकते। अपने भीतर उस जीवन को अनुभव करने के बाद ही कोई व्यक्ति जीवित होता है जिसकी कोई मृत्यु नहीं होती, और ऐसे तत्व के अनुसंधान का नाम सत्य की खोज है। सत्य की खोज कोई बौद्धिक, तार्किक खोज नहीं है कि हम कुछ विचार करें और गणित करें। सत्य की खोज किन्हीं शास्त्रों के अध्ययन, किन्हीं विद्याओं के सीख लेने की बात नहीं है। सत्य की खोज अपने भीतर अमृत की खोज है।

जो व्यक्ति अपने भीतर अमृत को उपलब्ध होता है वही केवल सत्य को जानता है, और जो व्यक्ति अमृत को उपलब्ध नहीं होता उसके जीवन में सब असत्य है। सब झूठ है। उसके जीवन में कुछ भी सार्थक नहीं है। हमारी दिशा, हमारे सोचने विचारने की, हमारी साधना की, हमारे जीवन की दिशा यदि अमृत के तलाश में संलग्न होती हो, अगर हम उस दिशा में थोड़े चलते हों। अगर हमारे कदम उस रास्ते पर थोड़े पड़ते हों और हमारे चरण उस

मार्ग पर जाते हों, तो जानना चाहिए हम जीवन की तरफ विकसित हो रहे हैं। अन्यथा प्रति-घड़ी हमारी गति मौत को करीब लाती है और हम मर रहे हैं। मैं जिस दिन पैदा हुआ, उसी दिन मैं मरना शुरू हो गया हूं। मैं रोज मरता जा रहा हूं। और अगर मैं कुछ जीवन के ऐसे सत्य को अनुभव न कर लूं जो इस मरने की क्रिया के बीच स्थिर हो, जो इस मरने की क्रिया के बीच भी मर न रहा हो तो मेरे जीवन का क्या मूल्य हो सकता है ? तो मेरे जीवन में कौन सा अर्थ और कौन सा आनन्द उपलब्ध हो सकता है ?

जो लोग मृत्यु पर केन्द्रित हैं। जो लोग अपने भीतर केवल उसे जानते हैं--जो मरणधर्मा है। वे आनन्द को अनुभव नहीं कर सकेंगे। आनन्द की अनुभूति अमृत की अनुभूति की उत्पत्ति है। अमृत को जानकर ही कोई केवल आनन्द को जानता है। इसलिए हमने अपने देश में, या जिन लोगों ने कहीं भी जमीन पर कभी जाना है, उन्होंने परमात्मा को आनन्द का स्वरूप माना है। परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं है, जिसको आप खोज लेंगे। परमात्मा एक आनन्द की चरम अनुभूति है। उस अनुभूति में आप कृतार्थ हो जाते हैं। और सारे जगत के प्रति आपके मन में एक धन्यता का बोध पैदा हो जाता है। आपमें कृतज्ञता पैदा होती है। कृतज्ञता को ही मैं आस्तिकता कहता हूं। ईश्वर को मानने को नहीं। वरन अपने भीतर एक ऐसे आनन्द को अनुभव करने को, कि उस आनन्द के कारण आप सारे जगत् के प्रति कृतज्ञ हो जायं। वह जो कृतज्ञता, वह जो ग्रेटीट्यूट का अनुभव है वही परम आस्तिकता की खोज, ऐसी कृतज्ञता की खोज जो मनुष्य नहीं कर रहा है वह अपने जीवन के अवसर को व्यर्थ खो रहा है।

यह चिन्तनीय और विचारणीय है। और यह हर मनुष्य के सामने एक प्रश्न की तरह खड़ा हो जाना चाहिए। यह असंतोष हर मनुष्य के भीतर पैदा हो जाना चाहिए कि वह खोजे, और जीवन को गंवा न दे। वह खोजे, लेकिन हम--दो तरह के लोगों में सारी दुनियां में बंट गये हैं। एक तो वे लोग हैं जो मानते ही नहीं हैं कि कोई आत्मा है, कोई परमात्मा है। एक वे लोग हैं जो मानते हैं, परमात्मा है, और आत्मा है। ये दोनों ही लोगों ने खोजें बन्द कर दी हैं। जिसने स्वीकार कर लिया है कि परमात्मा नहीं है। आत्मा नहीं है, इसलिए खोज का कोई प्रश्न नहीं है। दूसरे वर्ग ने स्वीकार कर लिया है आत्मा है। परमात्मा है। इसलिए उन्हें भी खोज का कोई कारण नहीं रह गया।

आस्तिक और नास्तिक दोनों ने खोज बन्द कर दी है। विश्वासी भी खोज बन्द कर देता है। अविश्वासी भी खोज बन्द कर देता है। खोज तो केवल वे लोग करते हैं जिनकी जिज्ञासा मुक्त होती है और किसी के विश्वास से किसी पंथ से, किसी विचार की पद्धति से, किसी आस्तिकता से, किसी नास्तिकता से अपने को बांध नहीं लेते हैं। वे लोग धन्य हैं, जिनकी जिज्ञासा मुक्त हो, जिनका संदेह मुक्त हो, जो सोच रहे हों और जिन्होंने दूसरों के सोच विचार को स्वीकार न कर लिया हो।

मैं एक गांव में था। अपने मित्र के साथ वहां गया। बहुत धूप थी। रास्ते बहुत गर्म थे उनके जूते कहीं खो गये थे। कोई चुरा ले गया। तो मैंने उनसे कहा कि दूसरी चप्पल पहन लें। वे बोले दूसरे की पहनी हुई चप्पलें मैं कैसे पहनूं। मैंने उनसे कहा, दूसरे के पहने हुए जूते पहनना कोई पसन्द नहीं करता। दूसरे के पहने हुए कपड़े

पहनना कोई पसन्द नहीं करता। लेकिन दूसरे के अनुभव किये हुए विचार सारे लोग स्वीकार कर लेते हैं। दूसरे के बासे कपड़े और और दूसरे का बासा भोजन कोई स्वीकार नहीं करेगा। लेकिन हम सारे लोगों ने दूसरे के बासे विचार स्वीकार कर लिये हैं। फिर चाहे वे विचार बुद्ध के हों, चाहे महावीर के हों। चाहे किसी के हों। कितने ही पवित्र पुरुष के वे विचार क्यों न हों, अगर वे दूसरे के अनुभव हैं, और उनको हमने स्वीकार कर लिया है, तो हम स्वयं सत्य को जानने से बंचित हो जायेंगे।

इस जगत में केवल वे ही लोग, केवल वे ही थोड़े से लोग, सत्य को अनुभव कर पाते हैं, जो किसी के विचार को स्वीकार नहीं करते हैं। जो किसी की उधार चिन्तनाओं को अंगीकार नहीं करते। और जो अपने मन के आकाश को जो अपने मन की चिन्तना को मुक्त रख पाते हैं। बहुत कठिन है अपनी चिन्तना को मुक्त रख पाना। अगर अपने भीतर आप देखेंगे तो शायद ही एकाध विचार मालूम होगा जो आपका अपना है। वे सब संग्रहीत मालूम होंगे। वे सब दूसरों के लिए हुए मालूम होंगे। और उनकी विचार शक्ति जब दूसरों के लिए हुए विचारों से बंध जाती है। सत्य के अनुसन्धान में असमर्थ हो जाती है। जितने ज्यादा कोई व्यक्ति दूसरे के विचार स्वीकार कर लेता है, उतनी उसकी विचारशक्ति नीचे दब जाती है। जो व्यक्ति जितने दूसरों के विचार अस्वीकार कर देता है उतनी उसके भीतर की विचार शक्ति जाग्रत होती है और प्रबुद्ध होती है।

सत्य के पाने के लिए स्मरणीय है, कि किसी का विचार कितना ही सत्य क्यों न प्रतीत हो, अंगीकार के योग्य नहीं है। किसी का

भी विचार अंगीकार के योग्य नहीं है, और जो व्यक्ति इतना साहस करता है कि सारे विचारों को दूर हटा देता है, उसके भीतर, जैसे कोई कुआं खोजे, और सारी मिट्टी और पत्थरों को अलग कर दे, तो नीचे से जल के स्रोत उत्पन्न हो जाते हैं। वैसे ही अगर कोई व्यक्ति अपने भीतर से सारे पराये विचारों को अलग कर दे। दूर हटा दे, तो उसके भीतर विचार शक्ति का, विवेक का, प्रज्ञा का जन्म होता है उसके भीतर जलस्रोत उपलब्ध होते हैं। उसकी स्वयं की शक्ति जागती है और वह स्वयं की शक्ति के जागरण में ही केवल सत्य के अनुभव की संभावना है।

एक दफा ऐसा हुआ, कुछ लोग बुद्ध के पास एक अन्धे को लेकर गये, और उन्होंने कहा, इस अन्धे आदमी को हम बहुत समझाते हैं कि प्रकाश है, लेकिन यह मानने को राजी नहीं होता। बुद्ध ने कहा, धन्य है यह अन्धा आदमी। इसकी संभावना है कि यह कभी आंख को खोज ले। लोगों ने कहा, आप यह क्या कहते हैं? हम इसे समझाते हैं हजार तरह से, कि प्रकाश है लेकिन यह मानने को राजी नहीं होता। बुद्ध, ने कहा, धन्य है यह अन्धा आदमी। इसकी संभावना है कि यह कभी प्रकाश को खोज ले। अगर इसने प्रकाश को मान लिया, दूसरों के आंखों के अमुभव को मान लिया, तो इसकी अपनी आंख की खोज बन्द हो जायेगी। और बुद्ध से उन्होंने कहा कि आप इसे समझायें कि प्रकाश है। बुद्ध ने कहा, यह पाप मैं नहीं करूंगा। मैं इसे नहीं समझा सकता कि प्रकाश है। मैं इसे जरूर बता सकता हूं कि आंखें खोलने का उपाय है। और बुद्ध ने कहा, मेरे पास इसे मत लाओ। किसी विचार की इसे जरूरत नहीं है, इसे किसी वैद्य के पास ले जाओ।

और इसे विचार मत दो, उपदेश मत दो। इसे उपचार की जरूरत है, इसे चिकित्सा की जरूरत है। वह अन्धा जादमी एक वैद्य के पास ले जाया गया और भाग्य की बात कुछ ही महीनों के इलाज से उसकी आंखें ठीक हो गयीं। वह नाचता हुआ आया और बुद्ध के पैरों पर गिर पड़ा, और उसने कहा, प्रकाश है, क्योंकि मेरे पास आंख हैं। आंख ही प्रकाश का प्रमाण है, ओर कोई भी नहीं है। और जो दूसरों की आंखों पर निर्भर हो जायेंगे उनकी संभावना बन्द हो जायेगी जो स्वयं की आंखों को उपलब्ध हो सके हैं। इस जमीन पर सत्य की खोज बन्द है। उसका कारण यह नहीं है कि लोग सत्य के विपरीत चले गये हैं, उसका कारण यह है कि लोग शास्त्रों के बहुत पीछे चले गये हैं। उसका कारण यह नहीं है कि लोगों ने सत्य की या सत्य की दिशा में उनकी प्यास समाप्त हो गयी है। बल्कि उसका कारण यह है कि वह यह भूल गये हैं, कि दूसरों के बहुत ज्यादा विचारों का बोझ उनकी स्वयं के विवेक की उर्जा को पैदा नहीं होने देता। उनकी स्वयं की अन्तस शक्ति जाग नहीं पाती

तो सत्य की खोज में लोग उत्सुक हैं उनके लिए पहली बात होगी कि वे इन्कार कर दें। खाली होना बेहतर है बजाय दूसरों के उधार विचारों से भरे होने के। नग्न होना बेहतर है बजाय दूसरों के वस्त्र पहन लेने के। अन्धा होना बेहतर है बजाय दूसरे की आंखों से देखने के। अगर यह सम्भावना, पहली बात है--इस भांति व्यक्ति की जिज्ञासा मुक्त होती है और विचार शक्ति जागती है। विचार शक्ति का जागरण पहली शर्त तो यह मानता है--और दूसरी एक बात बहुत जरूरी है। जो कि विचारशील लोगों को

समझना चाहिए, और वह यह है—

विचारशील की शक्ति बड़ी अद्‌भुत है। वह अद्‌भुत शक्ति बड़े विपरीत मापदण्डों से बड़ी विपरीत परिस्थितियों में पैदा होती है। साधारणतः लोग सोचते हैं कि जो आदमी जितना करेगा उतनी ज्यादा विचार की शक्ति जाग्रत होगी, यह गलत है। जो आदमी जितना निर्विचार होने की साधना करेगा उतनी उसकी विचार की शक्ति जाग्रत होती है। जो व्यक्ति जितना विचार करेगा वह सोचता हो कि उसमें विचार की शक्ति जाग्रत होगी तो वह गल्ती में है। विचार आप क्या करेंगे? जब भी आप विचार करेंगे तब आप दूसरे के विचारों को दोहराते रहेंगे। जब भी आप विचार करेंगे तब आपकी स्मृति, आपकी मेमोरी उपयोग में आती रहेगी और अधिक लोग स्मृति को ही ज्ञान समझ लेते हैं। और अधिक लोग स्मृति को ही विचार समझ लेते हैं। जब आप सोचते हैं। तो आपके भीतर गीता बोलने लगती है। जब आप सोचते हैं तब आपके भीतर महावीर बुद्ध बोलने लगते हैं। जब आप सोचते हैं तब आपका धर्म, आपकी शिक्षाएं जो आपको सिखायी गयी हैं। आपके भीतर बोलने लगती हैं। तब सचेत हो जाना चाहिए। ये विचार नहीं हैं। यह बिल्कुल यांत्रिक स्मृति है, यह बिल्कुल मैकेनिकल मेमोरी है यह भर दी गयी है और यह बोलना शुरू कर रही है। इसको जो विचार समझ लेगा वह गल्ती में पड़ जायेगा। जो इसका अनुसन्धान करेगा वह 'विचार से विचार' में भटकता रहेगा और समाप्त हो जायेगा। उसे सत्य का कोई अनुभव नहीं होगा।

फिर विचार के लिए क्या करना होगा? विचार की शक्ति

को जिसे जगाना है, उसे विचार करना छोड़ना होगा। और उसे निर्विचार में ठहरना होगा। इस निर्विचारण की स्थिति को हमारे मुल्क में समाधि कहते हैं। जो निर्विचार में ठहर जाता है। जो थाटलेसनेस में है। जहां कोई विचार नहीं है। ऐसी निष्कंप अवस्था में ठहर जाता है। जैसे किसी भवन में कोई दिया जलता हो और कोई हवाएं न आती हों, और दिये की बाती बिल्कुल ठहर जाय। ऐसे ही जब कोई व्यक्ति अपनी चेतना को, अपने कांसेसनेस को, अपनी अवेयरनेस को, अपने होश को ठहरा देता है और उसमें कम्प नहीं होते। उस निर्विचार निष्कंप क्षण में उसके भीतर विचार की चरम शक्ति का जागरण होता है और तब वह देख पाता है। उसे आंखें मिलती हैं। समाधि से आंखें मिलती हैं और व्यक्ति सत्य को देख पाता है। सत्य सोचा नहीं जाता, देखा जाता है। इसलिए पश्चिम में जिसे फिलासिफी कहते हैं, भारत में हम उसे दर्शन कहते हैं। दर्शन फिलासिफी पर्यायवाची शब्द नहीं हैं। और जो लोग समझते हैं कि दर्शन और फिलासिफी एक ही बातें हैं, उनका जानना बिल्कुल गल्त है। दर्शन का कोई सम्बन्ध चिन्तन से नहीं है दर्शन का सम्बन्ध तो अचिंत्य हो जाने से है। दर्शन का सम्बन्ध तो समाधि से है। तर्क से नहीं। विचार से नहीं है। निर्विचार हो जाने से है, और पश्चिम की फिलासिफी का सम्बन्ध चिंतन से है। विचार से है।

पश्चिम की फिलासिफी विचार है। भारत का दर्शन निर्विचार होता है। हमने इस मुल्क में एक अदभुत बात साधी थी और हमने एक बहुत अद्‌भुत प्रयोग किया कि अगर मनुष्य की सारी चिन्तना बन्द पड़ जाय तो क्या होगा? जब मनुष्य के सारे विचार बन्द हो

जायेंगे तो क्या होगा ? जब मनुष्य कुछ भी नहीं सोच रहा होगा तब क्या होगा ? यह बहुत अद्‌भुत बात है। जब आप कुछ भी नहीं सोच रहे हैं, तब आपको दिखायी पड़ना शुरू होता है। जब चिन्तन बन्द होता है। तो दर्शन उपलब्ध होता है। जब विचार की लहरें बन्द होती हैं तो आंखें इतनी स्वच्छ हो जाती हैं कि वे देख पाती हैं। और जब विचार चलते रहते हैं, तो देखना मुश्किल हो जाता है। हम इतने विचार से भरे हैं कि हम करीब-करीब अन्धे हैं, हमें कुछ दिखायी नहीं पड़ता।

एक मेरे मित्र सारी दुनिया का चक्कर लगा कर लौटे। उन्होंने बहुत झीलें देखीं। बहुत प्रपात देखे। वे मेरे गांव में आये। मैंने उनसे कहा कि गांव के पास भी एक प्रपात है। वह मैं दिखाने ले चलूं। वे बोले मैंने बहुत बड़े-बड़े प्रपात देखे हैं। और इसको देखने से क्या होगा ? मैंने कहा, अगर उन प्रपातों का विचार आप छोड़ दें, यह प्रपात भी देखने में अद्‌भुत है, अगर उन प्रपातों का विचार आप छोड़ दें और वे आपकी आंखों में तैरते न रहें तो आपको यह प्रपात भी दिखायी पड़ेगा, और यह बहुत अद्‌भुत है। वे मेरे साथ गये। दो घण्टे हम उस प्रपात पर थे लेकिन उन्होंने एक क्षण भी उस प्रपात को नहीं देखा। वह मुझे बताते रहे, अमरीका में कोई प्रपात कैसा है, स्विटजरलैंड में कोई प्रपात कैसा है उन्होंने कहां-कहां प्रपात देखे। उसकी चर्चा करते रहे। दो घण्टे के बाद जब हम वापस लौटे तो वह मुझसे बोले, बड़ा सुन्दर प्रपात था। मैंने कहा, आप यह बिल्कुल झूठ कह रहे हैं। इस प्रपात को आपने देखा नहीं। यह प्रपात आपको दिखाई नहीं पड़ा और मुझे अनुभव हुआ कि मैं एक अन्धे आदमी को लेकर आ गया हूं।

वह बोले, मतलब ? मैंने कहा, आप इतने उन प्रपातों के विचारों से भरे थे, आपकी आंखें इतनी बोझिल थीं, आपका चित्त इतना कंपित था। आपके भीतर इतनी स्मृतियां घेर रही थीं, कि उन सबके पार इस प्रपात को देखना असंभव था। इस प्रपात को देखने की जरूरत, अगर अनुभव होती तो उन सारी स्मृतियों को–उन सारे विचारों को उन सारे ख्यालों को छोड़ देने की जरुरत थी। जब वे छूट जाते, तो एक स्थान मिलता, खाली और स्वच्छ, जहां से उसके दर्शन हो सकते थे।

केवल वे ही लोग जगत में दर्शन को उपलब्ध होते हैं जो निर्विचार देखना सीख जाते हैं। जिनमें देखने की ऐसी क्षमता पैदा होती है जो विचार में नहीं, निर्विचार में है, और तब, ऐसे लोगों ने ही यह कहा है, यह सारा जगत परमात्मा से आछन्न है। ऐसे लोगों ने। ऐसे लोगों ने जब दरख्तों से देखा होगा, जिनकी आखें स्वच्छ और निर्मल हों और उनके चित्त विचार से ग्रसित नहीं हैं, तो दरख्त ही दिखाई नहीं पड़ता, दरख्त के भीतर जो प्राण की सत्ता है, वह अनुभव में आ जाती है, और जब वह आपको देखेंगे तो आपकी देह दिखाई नहीं पड़ती, बल्कि देह के पीछे जो आत्मा छिपी है, वह भी दिखायी पड़ जाती है।

जिनकी आंखें निर्मल और स्वच्छ हैं, और जिनके चित्त निर्विचार हैं, और शान्त हैं उन्हें इस जगत के प्रत्येक कण-कण में परमात्मा का अनुभव होना शुरू हो जाता है। जितनी गहरी दृष्टि उनकी होती जाती है, जितनी स्वच्छ और निर्मल, उतना ही यह जगत मिटता चला जाता है, और उसकी जगह परमात्मा का अनुभव शुरू हो जाता है। एक घड़ी आती है जब इस जगत में जगह

नहीं रह जाती। केवल ईश्वर शेष रह जाता है। वह घड़ी आनन्द की घड़ी है। वह घड़ी परम धन्यता की घड़ी है। उस घड़ी के बाद आपके भीतर संगीत बजना शुरू होता है। उसके बाद फिर आप सम्राट हो जाते हैं। उसके बाद दरिद्र नहीं रह जाते। दुख और पीड़ाएं आपकी गिर जाती हैं। और भीतर अत्यंत वैभव की उपलब्धि होती है। उसको हम स्वर्ग कहें, उसे हम मोक्ष कहें, उसे हम निर्वाण कहें, उसे हम जो भी नाम देना पसंद करें, हम दे सकते हैं। मात्र इतनी ही घटना घटती है कि आपको अपने भीतर सच्चिदानंद का अनुभव शुरू हो जाता है, और यह अनुभूति यदि मनुष्य को न हो पाये और ऐसी सभ्यता और संस्कृति जो इस अनुभूति की तरफ न ले जाती हो, वह झूठी है। वह मनुष्य विरोधी है। वह घातक है। वह विषाक्त है, और उसका जितना जल्दी अन्त हो जाय उतना बेहतर है। हमने अपने ही हाथों एक ऐसी सभ्यता और संस्कृति को धीरे-धीरे जन्म दिया है जो हमें उस अनुभूति से ले जाने में बाधा बन गयी है उस अनुभूति तक ले जाने में सहयोगी नहीं रह गयी है। वह अनुभूति जिस संस्कृति से पैदा हो, वही संस्कृति मानवीय हो सकती है। वही संस्कृति मनुष्य के हित में हो सकती है। वही संस्कृति कल्याण और मंगलदायी हो सकती है।

मैंने यह थोड़ी सी बातें आपसे कहीं। ये थोड़ी सी बातें इस आशा से आपसे कहीं हैं कि आप चाहें, तो अपने माध्यम से उस संस्कृति को जन्म देने में सहयोगी हो सकते हैं। प्रत्येक मनुष्य सहयोगी हो सकता है क्योंकि प्रत्येक मनुष्य में घटक है इस सारे समाज का। सारी मनुष्यता का। जब मैं अपने को बनाता और बिगाड़ता हूं तो मैं साथ ही सारी मनुष्यता को बना और बिगाड़

रहा हूं। जब मैं अपने भीतर शांति का आधार रखता हूं तो मैं सारी मनुष्यता के लिए शांति का मार्ग खोज रहा हूं, और जब मैं अपने भीतर अशांति और विषाद के बीज बोता हूं तो मैं सारी मनुष्यता के लिए वही कर रहा हूं, जो मैं अपने साथ कर रहा हूं, वह अनजाने में सारे मनुष्य के साथ कर रहा हूं। यह स्मरण होना जरूरी है। क्योंकि हम सारे लोग एक घटक हैं। इकाइयां हैं, और हम बनाते हैं विश्व को। हम अपने को निर्मित करके सारे जगत को बनाते हैं। आज यह दुनिया इतनी युद्ध, इतनी हिंसा, इतनी घृणा, इतने वैमनस्य से भरी हुई है, इसके लिए कौन जिम्मेवार है ? इसके लिए वे लोग जिम्मेवार हैं, जिन्होंने परमात्मा का अनुसंधान छोड़ दिया है। इसके लिए वे लोग जिम्मेवार हैं जिन्होंने अन्तरात्मा का अनुसंधान छोड़ दिया है। क्योंकि मेरा मानना यह है, और मैं समझता हूं, कि यह बात आपकी समझमें आ सकेगी कि जो व्यक्ति अपने भीतर आनन्द से भरा हुआ नहीं होगा वह व्यक्ति दूसरों को दुःख देने में आनन्द लेने लगता है। यह दुनिया इतनी दुःखी है। इतने दुःखी लोग हैं। आनन्दशून्य और रहित, कि उनका एक ही आनन्द रह गया है, कि वे दूसरों को पीड़ित करें। परेशान करें। दुःखी करें। जब वे दूसरों को दुःखी देखते हैं तो उन्हें अपने सुखी होने का थोड़ा सा भ्रम पैदा होता है, और अगर ऐसा होता रहा, तो युद्ध बढ़ते जायेंगे। हम हमारा हाथ एक दूसरे के गले पर रखते जायेंगे और हमारे हृदय कठोर और पत्थर होते जायेंगे और शायद इसका अन्तिम परिणाम यह हो कि हम सारे 'मनुष्य' को समाप्त कर लें।

हम इसकी तैयारी में हैं। पिछले दो महायुद्धों में दस करोड़

लोगों की हमने हत्या की है, और कोई आदमी मुझे दिखायी नहीं पड़ता जिसको यह ख्याल हो कि इन दस करोड़ लोगों की हत्या में हमारा हाथ है। अभी हम तैयारी कर रहे हैं और बड़ी हत्या की। शायद सामूहिक आत्मघात एक युनिवर्सल स्वीसाइड की तैयारी में हम लगे हैं। कोई राजनीतिक वजह नहीं है इसके पीछे कोई आर्थिक वजह है। इसके पीछे बुनियादी वजह, अध्यात्मिक है। जो लोग अन्तस में आनन्द को अनुभव नहीं करेंगे उनका अन्तिम परिणाम दूसरों को दुख देना, दूसरों की मृत्यु में आनन्द लेना होगा। वे अन्ततः युद्ध में सुख लेंगे। यह शायद आपको पता न हो, पिछले दो महायुद्धों के समय एक अद्भुत बात सारे योरोप में अनुभव हुई और वह यह थी कि जब युद्ध चलते थे तो लोगो ने आत्मघात बिलकुल नहीं किये। जब युद्ध चलते थे तो लोगों ने हत्याएं बहुत कम कीं। जब युद्ध चलते थे तब युद्ध चलते थे तब डाकेजनी और चोरी योरोप में कम हो गयीं।

मनोवैज्ञानिक हैरान हुए कि यह क्या वजह है। युद्ध चलता है, तो लोग आत्महत्या क्यों नहीं करते? युद्ध चलता है तो लोग एक दूसरे की हत्या क्यों नहीं करते? युद्ध चलता है तो डाकेजनी और चोरियां और अनाचार कम क्यों होते हैं? तो पता चला, युद्ध में इतनी हिंसा होती है कि उन सारे लोगों को काफी आनन्द मिल जाता है। दूसरी हिंसा करने की जरूरत नहीं रह जाती।

जो लोग दुःखी होंगे, वे लोग दुःख का संसार निर्मित करेंगे क्यों कि यह कैसे सम्भव है कि जो मेरे भीतर हो, उसके अलावा मैं कुछ निर्मित कर सकूं। आज हमें अगर घृणा दिखायी पड़ती है और वैमनस्य दिखायी पड़ता है, तो यह कोई ऊपरी बातें नहीं हैं। केवल

लक्षण हैं कि भीतर आनन्द नहीं है। अगर भीतर आनन्द हो तो आनन्दित आदमी के जीवन में एक घटना घटती है कि जो व्यक्ति जितने आनन्द से भरता जाता है उतना ही वह दूसरों को आनंदित करने की प्रेरणा से भी भर जाता है। व्यक्ति किसी को दुःखी नहीं कर सकता। आनन्दित व्यक्ति के लिए असंभव हो जाता है कि वह दूसरे को पीड़ा दे सकता। आनन्दित व्यक्ति के लिए असंभव हो जाता है कि वह दूसरे को पीड़ा दे और उसे सुख माने। उसका तो सारा जीवन आनन्द को बांटना बन जाता है।

ब्लावटेस्की ने सारी दुनिया की यात्रा की वह भारत में थी और दूसरे मुल्कों में थी। लोग उसे देखकर हैरान होते थे, क्योंकि वह एक झोला अपने साथ रखती थी और जब वह गाडी में बैठती, तो झोले में से कुछ निकाल कर बाहर फेंकती रहती थी। लोग उससे पूछते कि यह क्या है तो वह कहती इसमें फूलों के बीज हैं। जब वर्षा आयेगी, फूल खिलेंगे पौधे निकल आयेंगे। लोगों ने कहा, तुम इस रास्ते से दुबारा निकलोगी, इसका तो कुछ पक्का नहीं। तो उसने कहा इससे कुछ फरक नहीं पड़ता। फूल खिलेंगे कोई उन फूलों को देखकर आनन्दित होगा यह मेरे लिए काफी आनन्द है। उसने कहा जीवन भर बस एक ही कोशिश की। जब से मुझे फूल मिले हैं तब से फूल सबको बांटने की पूरी चेष्टा रही है, और जिस व्यक्ति को भी फूल मिल जायेंगे वह उनको बांटने के लिए उत्सुक हो जायेगा। आखिर बुद्ध या महावीर क्या बांट रहे हैं?

चालीस वर्ष तक बुद्ध जीवित रहे। क्या बांट रहे हैं? किस चीज को बांटने के लिए भाग रहे हैं और दौड़ रहे हैं? कोई आनन्द

उपलब्ध हुआ है, उसे बांटना जरूरी है।

साधारण आदमी, दुःखी आदमी सुख को पाने के लिए दौड़ता है और जो व्यक्ति प्रभु को अनुभव करता है वह सुख को बांटने के लिए दौड़ने लगता है। साधारण आदमी सुख को पाने के लिए दौड़ता है, और जो व्यक्ति प्रभु को अनुभव करता है वह सुख को बांटने के लिए दौड़ने लगता है। एक की दौड़का केन्द्र वासना होती है। दूसरे की दौड़ का केन्द्र करुणा हो जाती है। आनन्द करुणा को उत्पन्न करता है, और जितना आनन्द भीतर फलित होता है उतनी आनन्द की सुगन्ध चारों तरफ फैलने लगती है। आनन्द की सुगन्ध का नाम प्रेम है। जो व्यक्ति भीतर आनंदित होता है।, उसका सारा आचरण प्रेम से भर जाता है। व्यक्ति अन्तस में आनन्द को उपलब्ध हो, तो आचरण में प्रेम प्रगट होने लगता है। आनन्द का दिया जलता है प्रेम की किरणें सारे जगत में फैलने लगती हैं, और जब दुख का दिया भीतर हो तो सारे जगत में अन्धकार फैलता है। वह घृणा का हो वैमनस्य का हो।

यह संस्कृति, यह सभ्यता जिसमें हम जी रहे हैं अत्यंत जरा-जीर्ण है। और अत्यन्त मृत्यु के कगार पर खड़ी है। जिनको थोड़ा भी होश है वह इस पर विचार करेंगे और वे विचार करेंगे तो मेरी बातों में उन्हें कोई सार्थकता दिखाई पड़ सकती है, और तब उनके सामने एक ही कर्तव्य होगा, एक ही कर्त्तव्य। वह मनुष्य जाति के बदलने का नहीं। उनके सामने एक ही कर्तव्य होगा स्वयं को बदलने और परिवर्तित करने का। उनके सामने एक ही कर्तव्य होगा, कि वह अपने भीतर दुःख को विलीन कर दें, विसर्जित कर दें और आनन्द को उपलब्ध हो जायें।

मैंने बताया, कैसे वह आनन्द को उपलब्ध हो सकेंगे। यदि वे निर्विचारण को साधते हैं तो उन्हें दर्शन उपलब्ध होगा, और यदि दर्शन उपलब्ध होगा तो यह जगत उन्हें पदार्थ दिखायी नहीं पड़ेगा प्रभु दिखायी पड़ने लगेगा, और अगर यह जगत सारा प्रभु से आन्दोलित दिखायी पड़ने लगे। अगर यहां सारे लोगों के भीतर मुझे परमात्मा का अनुभव होने लगे तो मेरे जीवन का आनन्द, उसकी क्या सीमा रह जायेगी? क्योंकि जब किसी व्यक्ति को किसी दूसरे व्यक्ति में परमात्मा का अनुभव होता है, और जब किसी व्यक्ति को स्वयं में परमात्मा का अनुभव होता है तो सारी जगत-सत्ता से एक हो जाता है। उसके प्राण सारी जगत-सत्ता से मिल जाते हैं। वह सारी जगत-सत्ता के संगीत का एक स्वर हो जाता है, और तब उसका जीवन, तब उसकी चर्या, तब उसका उठना और बैठना, तब उसका सोचना और विचारना तब उसके समस्त जीवन उपक्रम आनन्द को बांटने लगते हैं, विस्तीर्ण करने लगते हैं।

सत्य की खोज इसलिए मैंने कही, कोई बौद्धिक जिज्ञासा मात्र नहीं है, बल्कि प्रत्येक मनुष्य के प्राणों की प्यास है। और जो व्यक्ति इस प्यास को अनुभव नहीं कर रहा है या इस प्यास की उपेक्षा कर रहा है वह अपनी मनुष्यता का अपमान कर रहा है। वह अपनी सबसे गहरी प्यास को, अपनी सबसे गहरी भूख को अधूरा छोड़ रहा है, और उसके दुष्परिणाम उसे भोगने पड़ेंगे।

हम सारे लोग अन्तरात्मा की जो प्यास है उसकी उपेक्षा करने का दुष्परिणाम भोग रहे हैं, और यह दुष्परिणाम मिट सकता है। थोड़े विवेक के जागरण से। थोड़े विवेक के अनुकूल जीवन की

साधना को उपलब्ध होने से। थोड़ा विवेक के अनुकूल और प्रकाश के अनुकूल अपने को व्यवस्थित करने से यह दुर्भाग्य विलीन हो सकता है।

ये थोड़ी सी बातें मैंने कही हैं। इस आशा में नहीं कि मैं जो कहूं वह आप मान लें क्योंकि मैं आपका कोई शत्रु नहीं हूं कि कुछ विचार आपके मस्तिष्क में डाल दूं। इस आशा से मैंने ये बातें कही हैं, कि इन बातों को आप देखेंगे। मान नहीं लेंगे। इन बातों के प्रति जाग्रत होंगे, इन्हें स्वीकार नहीं कर लेंगे।। इन बातों की सच्चाई अगर आपको अनुभव हो तो उसे अनुभव करेंगे। लेकिन इन विचारों को अपने भीतर नहीं रख लेंगे। कोई विचार कितना ही मूल्यवान हो फेंक देने जैसा है। हां उसमें जो अन्तर्दृष्टि है, अगर वह आपके भीतर आ जाय तो काम हो गया।

तो मैंने थोड़ी सी बातें कही हैं, आपको उनकी सचाई अगर अनुभव हो तो यह आपके काम की हो जायेंगी और अगर ये विचार आपके भीतर बैठ गये तो मैं और आपका बोझ बढ़ाने में सहयोगी हूं। वह बोझ वैसे ही बहुत काफी है। वह बोझ बहुत ज्यादा है और उस बोझ से आप इतने दबे हैं कि अब उस बोझ को बढ़ाने की और कोई जरुरत नहीं है। दुनिया को अब किसी पैगम्बर की, अब किसी तीर्थंकर की, किसी अवतार की कोई जरुरत नहीं है। वह काफी हैं। दुनिया को किसी शास्त्र की, नये सम्प्रदाय की, नये धर्म की, कोई जरुरत नहीं है। यह जरूरत से ज्यादा हैं। उनका बोझ बहुत है। अब दुनिया की जरूरत है, कि आपके बोझ को उतारने का कोई विचार हो सके। आपकी यात्रा चित्त को सरल और सहज बनाने का कोई उपाय हो सके।

उस सम्बन्ध में यह थोड़ी सी बातें मैंने कहीं। हो सकता है कोई बात आपके भीतर अन्तर्दृष्टि बन जाय और अन्तर्दृष्टि बन जाय, तो फिर आपकी हो जाती है। फिर मेरी नहीं रह जाती। अन्तर्दृष्टि बन जाय तो वह फिर आपकी हो जाती है। फिर वह किसी और की नहीं रह जाती। ऐसी अन्तर्दृष्टि की कामना करता हूं–ऐसे विचार की, ऐसी साधना की और मनुष्य के कल्याण की, सुख की।

३. स्वयं का अनुभव

प्रश्न—अस्पष्ट।

उत्तर—करीब-करीब एक ही बात पूछी गयी है, उसकी मैं चर्चा कर लेता हूं। और सच में बहुत बातें पूछने को हैं भी नहीं। प्रश्न तो एक ही है कि मनुष्य आनन्द को कैसे खोजें, आत्मा को कैसे खोजें, सत्य को कैसे खोजें, और मैंने आपसे कहा कि उस खोज का जो माध्यम है वह निर्विचार होना है। समाधि के माध्यम से सत्य का अनुभव होता है या आत्मा का अनुभव होता है।

समाधि का अर्थ है—सारे विचारों का शून्य हो जाना। ये विचार कैसे शून्य हों, इसके दो रास्ते हैं। एक रास्ता तो है कि हम अपने भीतर का पोषण न करें। हम सारे लोग विचार का पोषण करते हैं और संग्रह करते हैं। सुबह से सांझ तक हम विचारों को इकट्ठा करते हैं और यह इकट्ठा करने में हम कभी यह भी ध्यान नहीं रखते कि हम कचरा इकट्ठा कर रहे हैं या कोई सार्थक बात भी

इकट्ठा कर रहे हैं।

अगर मेरे घर में कोई कचरा फैंक जाये तो मैं झगड़ा करूंगा लेकिन अगर कोई आदमी आकर दो घण्टे मेरे दिमाग में कोई विचार फैंक जाय तो मैं कोई झगड़ा नहीं करता। दुनिया में एक दूसरे के मस्तिष्क में विचार फेंकने की पूरी स्वतन्त्रता है। इससे खतरनाक और कोई स्वतन्त्रता नहीं हो सकती है। क्योंकि मनुष्य का जितना घात विचार कर सकते हैं, उतना और कोई चीज नहीं कर सकती। हम इस भांति जाने अनजाने बिल्कुल मूर्छित अवस्था में विचारों को इकट्ठा करते रहते हैं। इन विचारों की पर्त पर पर्त हमारे भीतर पूरे चेतन, अचेतन मन पर इकट्ठी हो जाती है। उनकी इतनी गहरी दीवारें बन जाती हैं कि उनके भीतर प्रवेश करना मुश्किल हो जाता है। जब भी आप भीतर जायेंगे वे विचार आपको मिल जायेंगे। आत्मा तक पहुंचना संभव नहीं होगा। ये विचार दूर से आपको रोक लेंगे। भीतर आपको जाने नहीं देंगे। हर विचार अटकाता है और रोकता है। क्योंकि विचार आपको उलझा लेता है। जब भी आप भीतर प्रवेश करेंगे तभी कोई न कोई विचार आपको रोक लेगा। आप उसी के अनुसरण में जग जायेंगे। जब तक विचार बीच में रहेंगे। तब तक आपको पीछे नहीं जाने देंगें। वहीं रोक लेंगे। निर्विचार होने का इसीलिए आग्रह है, कि जब तक आप निर्विचार न हो जायें, तब तक भीतर गति नहीं हो सकती। आप बीच में जायेंगे। कोई विचार आपको अटका लेगा। आप उसी को सोचने में लग जायेंगे। सोचने में लग जायेंगे। बाहर आ जायेंगे। वह विचार आपको बहुत दूर ले जायेगा। उसके एसोसिएशंस होंगे। वह आपको दूर ले जायेगा। आप वहीं भटक

जायेंगे। आप पूरे भीतर प्रवेश नहीं कर पायेंगे।

हर आदमी भीतर जाता है। जितना ज्यादा विचारवान आदमी होता है, विचार से भरा होता है उतने बाहर से लौट आता है। उतना जल्दी कोई विचार उसको पकड़ लेता है। वह वापस लौट आता है।

ब्रिटिश विचारक डैरिड ह्यूम ने लिखा है कि मैंने यह सुनकर कि भीतर प्रवेश करना चाहिए, बहुत बार भीतर प्रवेश करने की कोशिश की, लेकिन जब भी मैं भीतर गया, मुझे आत्मा तो नहीं मिली, कोई विचार मिल जाता था। कोई कल्पना मिल जाती थी। कोई स्मृति मिल जाती थी। मुझे कोई आत्मा नहीं मिली। मैं बहुत बार भीतर गया मुझे ये ही मिले।

उसने ठीक लिखा। उसका अनुभव गलत नहीं है। आप भी अपने भीतर जायेंगे तो ये ही मिल जायेंगे और यह आपको बाहर ले आयेंगे। तो जिसको भीतर जाना हो, पूरे भीतर जाना हो, उसे बीच की इन सारी बाधाओं को अलग कर देना जरूरी है। तो पहली बात तो यह है, कि जिसे निर्विचार होना हो उसे व्यर्थ के विचारों को लेना बन्द कर देना चाहिए। उसे व्यर्थ के विचारों को लेना बन्द कर लेना चाहिए। इसकी सजगता उसके भीतर होनी चाहिए कि वह व्यर्थ के विचारों का पोषण न करे। वह अंगीकार न करे। उन्हें स्वीकार न करे। और सचेत रहे कि मेरे भीतर विचार इकट्ठे न हो जायें।

इसे कहने के लिए जरूरी होगा कि वह विचारों में जितना भी रस हो उसको छोड़ दे। हमें विचारों में बहुत रस है। अगर आप एक धर्म को मानते हैं उस धर्म के विचारों में आपको बहुत रस है।

जिसे निर्विचार होना हो उसे विचारों के प्रति विरस होना चाहिए। उसे किसी विचार में कोई रस नहीं रह जाना चाहिए। उसे यह सोचना चाहिए कि विचार से कोई प्रयोजन नहीं इसलिए उसमें कोई रस रखने का कारण नहीं।

कैसे वह विरस होगा—उन्होंने वहां पूछा है, कि कैसे यह संभव होगा।

यह संभव होगा विचारों के प्रति जागरुकता से। अगर हम अपने विचारों के साक्षी बन सकें और यह बन सकना कठिन नहीं है। अगर हम अपने विचारों की धारा को दूर खड़े होकर देखना शुरू करें, तो क्रमशः जिस मात्रा में आपका साक्षी होना विकसित होता है, उसी मात्रा में विचार शून्य होने लगते हैं।

बुद्ध का एक शिष्य था श्रोण—वह राजकुमार था। मुझे उसकी कथा इतनी प्रिय रही कि मैंने उसे सारे मुल्क में बार-बार कहा। मुझे उसके मुकाबले कोई बात दिखाई नहीं पड़ती। वह राजकुमार था। वह दीक्षित होकर भिक्षु हो गया था, साधु हो गया। पहले दिन जब वह भिक्षा मांगने जाने लगा तो बुद्ध ने उससे कहा कि अभी तुझे भिक्षा मांगने का कुछ पता नहीं। कल तक राजकुमार था, आज भिक्षा के पात्र को लेकर जायगा। पता नहीं कैसा तुझे लगे? इसलिए मैंने अपनी एक श्राविका को कहा कि जब तक भिक्षा के मांगने में निष्णात न हो जाय, तब तक भोजन वहीं कर लेना। अभी तू भिक्षा मत मांग, वहां जाकर भोजन कर आ।

वह राजकुमार श्रोण, जो कि संन्यासी हो गया था, उस श्राविका के घर भोजन करने गया। उस महिला के घर भोजन करने गया। कोई दो मील का फासला था। वह रास्ते पर बहुत

सी बातें सोचने लगा। उसे ख्याल आया उन भोजनों को जो उसे प्रिय थे। उसने सोचा, आज पता नहीं क्या अप्रिय भोजन मिले। कया अरुचिकर भोजन मिले। क्या रूखा सूखा मिले। उसे जो-जो प्रिय भोजन थे वे सब स्मरण आये और यह भी ख्याल आया कि अब उनके मिलने की संभावना इस जीवन में दुबारा नहीं है। लेकिन जब वह श्राविका के घर पहुंचा और भोजन के लिए बैठा तो देखकर हैरान हुआ। उसकी थाली में वे ही भोजन थे जो उसको प्रिय थे। उसे बड़ी हैरानी हुई। उसे बहुत अचम्भा हुआ। तब उसने सोचा, शायद यह संयोग की ही बात होगी कि आज ये भोजन बने हैं। उसने चुपचाप भोजन किया। जब वह भोजन कर रहा था, उसे यह ख्याल आया कि जब यह भोजन करने के बाद एकदम फिर दो मील दोपहरी में यात्रा करना है। और आज तक मैंने ऐसा कभी नहीं किया। भोजन के बाद तो मैं विश्राम करता था। वह श्राविका पंखा करती थी। उसने कहा भन्ते, अगर भोजन के बाद थोड़ी देर विश्राम करेंगे तो मुझ पर बड़ी कृपा होगी। वह शिष्य थोड़ा हैरान हुआ। उसे लगा कि मैंने तो कहा नहीं, मन में सोचा था। लेकिन सोचा, शायद संयोग की बात होगी। मैंने सोचा, उसी वक्त उसने प्रार्थना की। एक चटाई डाल दी। वह उस पर लेटा। वह लेटते ही उसे ख्याल आया। आज अपना न तो कोई साया है, न कोई शैया है। आज अपने पास कुछ भी नहीं है वह श्राविका पीछे थी। उसने कहा, भन्ते, शैया न तो आपकी है। न मेरी है। न साया आपका है न मेरा है। किसी का भी कुछ नहीं है।

अब संयोग को मान लेना कठिन था। वह घबड़ा कर बैठ गया। उसने कहा, बात क्या है? क्या मेरे विचार पढ़ लिये जाते

हैं। उस श्राविका ने कहा, ध्यान का अभ्यास करते-करते पहले तो अपने विचार दिखायी देने शुरू हुए। फिर अपने विचार तो समाप्त हो गए। अब दूसरे के विचार भी दिखाई देने शुरू हो गये हैं। वह उठकर बैठ गया। उसने कहा, मैं जाऊं? श्राविका ने कहा, आप अभी विश्राम कहां किये। लेटे भी नहीं। लेकिन वह भिक्षु रुका नहीं। उसने जाकर बुद्ध को कहा कि मैं कल से उस श्राविका के यहां भोजन करने नहीं जा सकूंगा बुद्ध ने कहा, क्या बात है? वह युवक कहने लगा——बात, मेरा कोई अपमान नहीं हुआ। लेकिन मैं नहीं जाऊंगा। आप छोड़ दें उस बात को। श्राविका के यहां नहीं जाऊंगा।

बुद्ध ने कहा, बिना जाने मैं कैसे छोड़ सकता हूं? वह युवक बोला, जानने की बात यह है, कि मैं उसके घर गया, वह विचार पढ़ने में असमर्थ है। और मुझे तो उस सुन्दर युवती को देखकर विचार और वासना भी मन में उठी। वह भी पढ़ ली गई होगी। अब मैं कल उसके द्वार पर कैसे जा सकता हूं, और किस मुंह को लेकर जाऊंगा? बुद्ध ने कहा, मैंने जानकर तुम्हें वहां भेजा है। यह तुम्हारी साधना का हिस्सा है। कल भी तुम्हें वहीं जाना होगा और परसों भी तुम्हें वहीं जाना होगा। उसके बाद के दिनों में भी तुम्हें वहां जाना होगा। उस दिन तक, जिस दिन से तुम उस द्वार तक निर्विचार होकर नहीं लौट आओ। मजबूरी थी उस भिक्षु को वहां जाना पड़ा। बुद्ध ने कहा, एक स्मरण रखना। किसी विचार से लड़ना मत। किसी विचार ने संघर्ष मत करना। किसी विचार के विरोध में खड़े मत होना। एक ही काम करना कि जब तुम रास्ते से जाओ तो अपने भीतर सजगता को रखना। जो भी विचार

उठते हों उनको देखते रह जाना। सिर्फ मात्र देखते हुये जाना, और कुछ भी मत करना। तुम्हारा निरीक्षण, तुम्हारा ओब्जर्वेशन बना रहे। तुम देखते रहो अनदेखा कोई विचार न उठे। बेहोशी में कोई विचार न उठे। तुम्हारी आंख भीतर गड़ी रहे और तुम देखते रहो कि कौन से विचार भीतर उठ रहे हैं। सिर्फ निरीक्षण करना, लड़ना मत।

वह युवक गया। जैसे-जैसे उस महिला का द्वार करीब आने लगा, मकान करीब आने लगा, उसकी घबड़ाहट और बेचैनी बढ़ने लगी। उसकी परेशानी बढ़ने लगी। जैसे-जैसे बेचैनी बढ़ने लगी वैसे-वैसे वह सजग होने लगा जैसे-जैसे भय का बिन्दु करीब आने लगा, जैसे-जैसे लगने लगा, अब वह महिला करीब ही होगी जो पढ़ सकती है, वैसा-वैसा वह अपनी आंख को भीतर खोलने लगा। जब वह सीढ़ियां चढ़ता था—उसने पहली सीढ़ी पर पैर रखा, उसने अपने भीतर देखा। वह हैरान हो गया। भीतर कोई विचार ही नहीं है। दूसरी सीढ़ी पर पैर रखा। भीतर बिल्कुल सन्नाटा मालूम हुआ। उसने तीसरी सीढ़ी पर पैर रखा। उसे वह दिखायी पड़ा। अपने आर पार देखा और एकदम खालीपन है। वहां कोई विचार नहीं है। वह बहुत घबड़ाया। ऐसा उसने कभी अनुभव नहीं किया था, कि बिल्कुल विचार ही न हों। और जब विचार बिल्कुल नहीं थे, तो उसे ऐसा लगा कि जैसे बिल्कुल हवा हो गया। हल्का हो गया।

वह गया। उसने भोजन किया। वह नाचता हुआ वापिस लौटा। उसने बुद्ध के पैर पकड़ लिए और उसने कहा। अद्‌भुत अनुभव हुए हैं। जब मैं उसकी सीढ़ियों तक पहुंचकर भीतर बिल्कुल

सजग हो गया था। सचेत हो गया था, होश से भर गया था तो मैं हैरान हो गया था। एक भी विचार नहीं था। सब विचार शून्य हो गये थे। बुद्ध ने कहा, विचार को शून्य करने का उपाय है विचार के प्रति सजग हो जाना।

जो व्यक्ति जितना सजग हो जायेगा विचारों के प्रति, उतने ही विचार उसी भांति उसके मन में नहीं आते। जैसे घर में दिया जलता हो तो चोर न आयें। और घर में अन्धकार हो तो चोर झांकें और अन्दर आना चाहें। भीतर जो होश को जगा लेता है, उतना ही विचार क्षीण होने लगते हैं। जितनी मूर्छा होती है भीतर जितना सोयापन होता है भीतर, उतने ज्यादा विचारों का आगमन होता है। जितना जागरण होता है उतने ही विचार क्षीण होने लगते हैं।

निर्विचार होने का उपाय है विचारों के प्रति साक्षी भाव को साधना। कोई एक क्षण में सध जायेगा। यह नहीं कहता हूं। कोई एक दिन में सध जायेगा। यह भी नहीं कह रहा हूं। लेकिन अगर निरन्तर प्रयास हो तो थोड़े ही दिनों में आपको पता चलेगा कि जैसे-जैसे आप विचारों को देखने लगेंगे—कभी घंटे भर को किसी एकान्त कोने में बैठ जायं और कुछ भी न करें, सिर्फ विचारों को देखते रहें। कुछ भी न करें उसके साथ, कोई छेड़-छाड़ न करें, सिर्फ उन्हें देखते रहें, और देखते-देखते ही धीरे-धीरे आपको पता चलेगा कि वह कम होने लगेंगे। देखना जैसे-जैसे गहरा होगा वैसे-वैसे वह विलीन होने लगेंगे। जिस दिन देखना पूरा हो जायेगा। जिस दिन अपने भीतर आप आरपार देख सकेंगे। जिस दिन आपकी आंख बंद होंगी और आप की दृष्टि भीतर पूरी की पूरी देख रही होगी उस

दिन आप पायेंगे। कोई विचार का कोलाहल नहीं है। वे गये। और जब वे चले गये होंगे। उसी शान्त क्षण में आपकी अद्भुत दृष्टि, अद्भुत दर्शन, अदभुत आलोक का अनुभव होगा। वह अनुभव ही सत्य का दर्शन है, और वही अनुभव स्वयं का दर्शन है।

स्वयं के माध्यम से ही सत्य जाना जाता है। और कोई द्वार नहीं है। स्वयं के द्वार से ही सत्य को जाना जाता है, और सत्य को जान लेना आनन्द में प्रतिष्ठित हो जाना है। असत्य में होना दुख में होना है। अज्ञान में होना दुख में होना है। सत्य की उस ज्ञान दशा में आनन्द उपलब्ध होता है। आनन्द और आतमा अलग न समझें। आनन्द और सत्य अलग न समझें। स्वयं और सत्य अलग न समझें। ऐसी जो प्रक्रिया का उपयोग क्रमशः अपने जीवन में करेगा वह कभी निर्विचार का अनुभव कर लेगा। निर्विचार को जो अनुभव कर लेता है उसकी पूरी विचार की शक्ति जाग्रत हो जाती है। उसे चक्षु मिल जाते हैं। जैसे किसी ने अन्धेरे में प्रकाश कर दिया हो। जैसे किसी ने अन्धे को आंख दे दी हो। ऐसा उसे अनुभव होता है।

यह क्रमिक साधना हो तो निश्चित ही उपलब्ध हो सकता है। प्रत्येक व्यक्ति अधिकारी है और हकदार है। जो अपने अधिकार को मांगेगा उसे मिल जाता है। जो उसे छोड़े रखता है वह खो देता है।

प्रश्न--अस्पष्ट

उत्तर--बिलकुल ही ठीक कह रहे हैं कि अगर हमें इंजीनियरिंग सीखनी हो या टेक्नोलाजी सीखनी हो तो हमें दूसरों का विचार स्वीकार करना होगा। लेकिन अगर हमें प्रेम सीखना हो--तो हमें

दूसरों का विचार नहीं लेना होगा। टेक्नोलाजी में और धर्म में यही अन्तर है। जो चीज सीखी जा सकती है वह पदार्थ से सम्बन्धित होती है। और जो चीज नहीं सीखी जा सकती है वह परमात्मा से सम्बन्धित होती है।

परमात्मा कोई सीखा नहीं जा सकता। नहीं तो हम स्कूल कालेज खोल लेंगे और सब मामला आसान हो जायेगा--इस बात को स्मरण रखें, साइंस सीखी जा सकती है। साइंस दूसरों के अनुभव का निचोड़ है। धर्म नहीं, धर्म अपना अनुभव है। और यही धर्म और साइंस बड़ी विभिन्न दिशाएं हैं। साइंस हमेशा परम्परा है। धर्म परम्परा नहीं है। साइंस में एक वैज्ञानिक दूसरे वैज्ञानिक के कन्धे पर खड़ा होता है। धर्म में अपने ही पैरों पर खड़ा होना पड़ता है। किसी का कन्धा सहारा नहीं बन सकता।

न्यूटन को हटा दें तो आइन्स्टीन को खड़े होने की जगह नहीं रह जायेगी। महावीर, बुद्ध को हटायें, फिर भी मैं खड़ा हो सकता हूं।

धर्म निजी और वैयक्तिक अनुभव है। साइंस सामाजिक अनुभव है। इसलिए साइंस सीखी जा सकती है। उसके कालेज हो सकते हैं। शिक्षाएं हो सकती हैं। सत्य नहीं सीखा जा सकता। सत्य तो केवल स्वयं साधा जाता है। सीखा नहीं जा सकता। वह हमेशा निजी है। और निजी है इसलिए अदभुत है। निजी है इसलिए अद्भुत है। साइंस की दिशा अलग है। और धर्म की दिशा अलग है। मैं सोचता हूं, समय नहीं है, अन्यथा मैं और विस्तार से आपसे बात करता। फिर भी मैं सोचता हूं, शायद मेरी बात थोड़ी बहुत साफ हो सकी है।

दो छोटे प्रश्न और हैं। ठीक तो पूछा है कि हाथी विचार नहीं करता तो वह आनन्द को और आत्म ज्ञान को उपलब्ध हो जाता है ?

उत्तर--यह बहुत ही अच्छी बात पूछी है। आपको जो यह विचार उठा, मुल्क में बहुत लोग मुझसे यह पूछते हैं। लेकिन निर्वि-चार होने में और विचारहीन होने में अन्तर है। विचारहीन होने में और निर्विचार होने में अन्तर है।

निर्विचार का अर्थ है जिसने विचारों का परित्याग किया हो। जो विचारों का परित्याग करने में समर्थ होता है। उसकी विचार-शक्ति जाग्रत हो जाती है। और विचारहीन होने का अर्थ है, जिसमें विचार का कोई होता ही नहीं है। वह विचार का अभाव है एक। एक विचार शक्ति का सद्भाव है। निर्विचार होने से विचारहीन नहीं हो जाते आप। परिपूर्ण विचार को उपलब्ध होते हैं। मैंने कहा निर्विचार जो है, विचार शक्ति के परिपूर्ण जागरण का उपाय है। विचारहीन होने को नहीं कह रहा हूं। निर्विचार होने को कह रहा हूं। अविवेक के लिए नहीं कह रहा हूं। पूरे विवेक को जगाने के लिए कह रहा हूं।

पशुओं में विचारणा नहीं है। वह विचार से भी नीचे की दशा है। मनुष्यों में विचार है। वह विचारहीनता से ऊपर की दशा है। सन्तों में निर्विचार है। वह विचार से भी ऊपर की अवस्था है। अविचार, विचार और निर्विचार ये तीन सीढ़ियां हैं। और अक्सर जो नीचे की सीढ़ी है वह ऊपर की सीढ़ी से मिलती-जुलती होती है। वहां व्रत पूरा होता है। इसलिए एकदम अबोध व्यक्ति और परिपूर्ण साधु में कुछ समानताएं मालूम होंगी। एकदम अज्ञानी

में और परम ज्ञानी में कुछ समानताएं मालूम होंगी। उनका व्यव-हार कुछ एक-सा लगेगा। और अनेक दफा भूल हो जायगी। उसका कारण है कि दो परिपूर्णताएं एक जगह जाकर मिलती हैं। वह अबोध मालूम होगा। परम ज्ञानी जो है वह बिलकुल अबोध मालूम होगा। अत्यन्त अबोध के कारण अबोध मालूम होगा। बहुत प्रकाश हो जाय तो आंख अन्धी हो जाती है। इत्ता प्रकाश हो तो आंख बन्द हो जाती है। बिल्कुल प्रकाश न हो तो अन्धकार हो जाता है। बहुत प्रकाश हो जाय तो भी अन्धकार हो जाता है।

४. साक्षी का अनुभव

एक छोटी सी कहानी से आज की चर्चा प्रारम्भ करूंगा।

ऐसी ही एक सुबह की बात है। एक छोटे में, एक फकीर स्त्री का आवास था। सुबह जब सूरज निकल रहा था और रात समाप्त हो रही थी तो वह फकीर स्त्री अपने उस झोंपड़े के भीतर थी। एक यात्री उस दिन उसके घर मेहमान था। वह भी एक साधु, एक फकीर था। वह झोपड़े के बाहर आया और उसने देखा कि बहुत सुन्दर प्रभात का जन्म हो रहा है। उसने देखा कि बहुत ही सुन्दर प्रभात का जन्म हो रहा है और बहुत ही प्रकाशवान सूर्य उठ रहा है। इतनी सुन्दर सुबह थी। पक्षियों का इतना मीठा संगीत था। इतनी शान्त और शीतल हवाएं थीं, कि उसने भीतर आवाज दी फकीर स्त्री को, उस स्त्री का नाम राबिया था।

उस साधु ने चिल्लाकर कहा, राबिया भीतर क्या कर रही हो, बाहर आओ। परमात्मा ने एक बहुत सुन्दर सुबह को जन्म दिया

है। राबिया ने भीतर से कहा, मेरे मित्र, क्या मैं तुमसे कहूं कि तुम्हीं भीतर आ जाओ। बाहर बहुत दिन रह चुके, और क्या मैं तुम से कहूं कि जिसने सूरज को जन्म दिया है और जिसने सुबह को जन्म दिया है उसमें उतना सौंदर्य कभी नहीं हो सकता। मैं तो भीतर उसको देख रही हूं जिसने जन्म दिया है सारे सौंदर्य को। राबिया ने कहा, तुम बाहर जिस सौंदर्य को देख रहे हो, उसके जन्म देने वाले को भीतर मैं देख रही हूं। बेहतर हो कि तुम भीतर आ जाओ।

दुनियां में दो ही तरह के लोग हुए हैं--एक वे जो बाहर के सौंदर्य को देखकर जीवन समाप्त कर देते हैं, और एक वे जो भीतर के सौंदर्य को भी देख पाते हैं। और दुनिया में दो ही तरह के समाज हैं, दो ही तरह के धर्म हैं। दो ही तरह के वर्ग हैं। और अगर सारे वर्ग मिट जायेंगे, सारे समाज मिट जायेंगे, सारे सम्प्रदाय मिट जायेंगे। और गरीब अमीर के बीच फासला नहीं होगा। मालिक और गुलाम के बीच कोई फासला नहीं होगा, तब भी ये दो वर्ग बने रहेंगे। ये कभी भी मिटने वाले नहीं हैं।

ये दो वर्ग बहुत बुनियादी हैं, एक जो बाहर देखने वाले लोग हैं वे, और एक जो भीतर देखने वाले लोग हैं। जो बाहर देखते हैं, वें केवल संसार को देख पाते हैं। जो भीतर देखते हैं, वे सत्य को भी देख पाते हैं।

तो उस फकीर स्त्री ने सुबह-सुबह उस साधु को कहा, तुम्हीं भीतर आ जाओ, बहुत दिन बाहर रह लिये भीतर आने का यह आमंत्रण ही धर्म है। भीतर आने का यह बुलावा धर्म है। जिन लोगों ने भीतर जाकर देखा है, उन्होंने वे सारी चीजें

उपलब्ध कर ली हैं, जो बाहर खोजने वाले उपलब्ध नहीं कर सके। बाहर कोई कितना ही खोजे, न तो शान्ति मिलती है, न सत्य मिलता है, न आनन्द मिलता है। बाहर भ्रम होता है कि मिल जायेगा, लेकिन मिल नहीं पाता। बाहर चलना तो बहुत होता है, लेकिन पहुंचना कभी नहीं होता।

आज तक पूरे मनुष्य के इतिहास में एक भी मनुष्य ऐसा नहीं हुआ जो बाहर चला हो और जिसने अन्त में कहा हो, मुझे कृतार्थता मिल गयी। मुझे धन्यता मिल गयी है। जिसने अन्त में कहा हो, मुझे आनन्द उपलब्ध हुआ है। करोड़ों लोग इस जमीन पर रह रहे हैं और मिट गये हैं, लेकिन एक भी गवाही इस बात की नहीं है, कि किसी मनुष्य ने यह कहा हो कि मैंने बाहर खोजा और मुझे आनन्द मिला। एक भी गवाही जिस बात की नहीं है। एक भी आदमी जिस पक्ष में नहीं है। फिर भी हम न मालूम कैसे अन्धे हैं कि उसी दिशा में खोज रहे हैं जिस दिशा में कभी उपलब्ध नहीं हुआ है।

हां, ऐसी कुछ गवाहियां हैं जिनका कहना है कि भीतर आनन्द उपलब्ध होता है। और मैं आपको यह भी कह दूं कि ऐसा एक भी आदमी नहीं हुआ है जमीन पर, जिसने भीतर झांका हो और कह दिया कि वहां आनन्द नहीं है। ऐसा एक भी आदमी नहीं हुआ निरापवाद रुप से। जिन्होंने भीतर झांका है, उन्होंने कहा है, वहां आनन्द है। एक भी मनुष्य पूरे इतिहास में ऐसा नहीं है जिसने भीतर झांक कर कहा हो, वहां आनन्द नहीं है। ऐसा जो प्रमाणित सत्य हो, उस तरफ हमारी आंखें न हों तो बड़ा आश्चर्य होगा। और ऐसा प्रमाणित जो असत्य हो उसी तरफ हमारी दौड़

हो, तो बड़ी हैरानी होती है। जरुर हमारी बनावट में कोई भूल है। जरूर हमारे ढांचे में, दिमाग में, कोई गड़बड़ है। जरूर कोई प्राकृतिक ऐसी गड़बड़ है कि सब जानकर भी हम बाहर की तरफ जाते हैं और भीतर नहीं आ पाते।

अगर मैं आपको कहूं कि ऐसी भूल आपको स्पष्ट दिखाई पड़ रही है। मनुष्य के साथ एक दुर्घटना है, और वह दुर्घटना यह है कि उसकी सारी इन्द्रियों के द्वार बाहर खुलते हैं। कोई इन्द्रिय भीतर की तरफ नहीं खुलती। उसका स्वयं का होना भीतर है। और उसके द्वार सारे बाहर खुलते हैं। हम एक ऐसे मकान में रह रहे हैं जिसका कोई दरवाजा भीतर की तरफ नहीं खुलता। सब दरवाजे बाहर की तरफ खुलते हैं। तो भी हम आंख खोलते हैं, बाहर आंख खुलती है। जब भी कान खोलते हैं, बाहर कान सुनता है। जब भी हाथ फैलाते हैं बाहर की चीज पकड़ में आ जाती है। हमारी सारी इन्द्रियां बहिर्मुखी हैं। उनका निर्माण ऐसा है कि वे बाहर की तरफ खुलती हैं। वह भीतर की तरफ नहीं खुलतीं। और चूंकि वह भीतर की तरफ नहीं खुलतीं इसलिए जब हम में प्यास जगती है, आनन्द को पाने की, जब हमारे प्राण आनन्द को पाने को प्यासे होते हैं। अगर हमारे भीतर अभीप्सा सरकती है। अगर हमारे भीतर कण-कण, रोयां रोयां दुःख के ऊपर उठना चाहता है, और अशान्ति पाना चाहता है, तो स्वभावतः हम बाहर खोजने लगते हैं।

एक और छोटी कहानी कहूं जो मुझे बड़ी प्रीतिकर रही है। और उसी फकीर स्त्री के सम्बन्ध में, जिसके बाबत मैंने कहा, जिसने उस साधु को कहा कि तुम्हीं भीतर आ जाओ।

एक दिन सांझ लोगों ने देखा वह फकीर स्त्री अपने दरवाजे के बाहर कुछ ढूंढ़ती है, लोगों ने पूछा क्या ढूंढ़ती हो? वह अत्यंत वृद्ध थी। लोगों ने सोचा उसकी सहायता कर दूं। उस स्त्री ने कहा, तुम सहायता तो करोगे, लेकिन जो मैं खोजती हूं, तुम शायद ही पा सको। क्योंकि मैं भी नहीं पा सकूंगी। उन्होंने कहा, फिर भी फिर भी तुम खोज रही हो, तो हम कुछ सहायता कर दें तो शायद मिल जाय। उस स्त्री ने कहा, मेरी कपड़ा सीने की एक सुई खो गयी है उसे खोजती हूं। उन लोगों ने भी खोजना शुरू किया। रात गिर गयी थी, लेकिन थोड़ा सा प्रकाश जलता था एक रास्ते के लैंप पर। उसकी रोशनी पड़ती थी वह उससे ढूंढ़ते रहे। फिर एक आदमी ने पूछा, सुई बहुत छोटी थी, हम भी तो पता लगा लें कि सुई गिरी कहां? कहां खोयी? तो हम वहां खोज लें। वह बुढ़िया कहने लगी, यह मत पूछो—यह मत पूछो—लोगों ने कहा, यह न पूछेंगे तो खोजना मुश्किल है। रास्ता बड़ा है। सुई बहुत छोटी है और प्रकाश कम। वह बूढ़ी स्त्री कहने लगी, सुई तो मेरे भीतर कमरे में गिरी है। उन लोगों ने कहा, फिर तो तुम पागल हो जो उसे बाहर खोजती हो। वह स्त्री बोली, जब मैं सींती थी, मेरी सुई गिरी तो भीतर सूरज डूबने मे करीब था। मैं इतनी गरीब स्त्री हूं मेरे पास कोई दिया तो है नहीं। कोई प्रकाश तो है नहीं। अंधेरा हो गया तो मैं खोजते ही बाहर के दालान में आ गयी वहां थोड़ी रोशनी थी। फिर वह रोशनी भी चली गयी। बाहर सड़क पर आ गयी। यहां लैंप जलता है। यहां खोजने में आसानी होगी। उन लोगों ने कहा, तुम बिल्कुल पागल हो। जो चीज जहां गिरी है वहीं खोजी जा सकती है।

तो उस फकीर स्त्री ने कहा। मैं तुम सबको भी ऐसे ही खोज के देख रही हूं। तुम सब वहां खोज रहे हो जहां चीज गुमी ही नहीं। और चूंकि मनुष्य की इन्द्रियों का प्रकाश बाहर पड़ता है इसलिए आदमी बाहर खोजने लगता है। जरूरी है कि हम जिस बात की तलाश कर रहे हैं उसे खोया कहां? और यह स्मरण रखें, तलाश केवल इसकी होती है जिसे खोया हो। अन्यथा हमें पता भी नहीं हो सकता।

मनुष्य आनन्द को खोजता है। यह इस बात का सबूत है कि आनन्द खोया गया है। अन्यथा आनन्द का पता भी नहीं हो सकता था। मनुष्य सत्य को खोजता है। यह इस बात की सूचना है कि सत्य खोया गया है। अन्यथा सत्य का कोई पता नहीं हो सकता। हम प्राणों के किसी तल पर जानते हैं कि सत्य को हमने खोया है। अनन्त को हमने खोया है। इसीलिए हम खोजते हैं। लेकिन हम यह नहीं पूछते कि उसे खोया कहां है? और जो यह नहीं पूछेगा उसकी सारी खोज व्यर्थ ही जायेगी। सबसे पहले यह जानना जरूरी है कि हमने आनन्द को खोया कहां है? क्या हमने उसे बाहर के जगत में खोया है। तो हम उसे बाहर खोजें।

आप कहेंगे हमें कुछ भी पता नहीं कि हमने कहां खोया? तब भी मैं कहूंगा कि यह पता न हो कि कहां खोया तो, जो समझदार है वह सबसे पहले अपने मकान में खोजेगा। इसके बाद बाहर निकलेगा। अगर वहां न मिले तो फिर बड़ी दुनिया में खोजने निकलना चाहिए। सबसे पहले जो चीज खो गयी है, उसे भीतर खोज लेना चाहिए। अगर वहां न मिले तो फिर इस सारी बड़ी दुनिया में खोजने निकलना चाहिए। लेकिन हम वहां नहीं खोजते और बाहर

खोजने निकल जाते हैं। और फिर यह दुनिया बहुत बड़ी है, और इसके छोर बहुत अनन्त हैं। जीवन बहुत अल्प है। हम खोजते समाप्त हो जाते हैं, और दुनिया के छोरों तक नहीं पहुंच पाते। इसलिए यह भ्रम बना रहता है कि अभी कुछ खोजने को बाकी दुनिया थी। शायद वहां मिल जाता। इसलिए जन्म-जन्म हम खोजते हैं। हमारे हजारों जन्म चुकता हो जायेंगे। यह दुनिया समाप्त नहीं होगी। इसके रास्ते बहुत अनन्त हैं।

जहां इन्द्रियां ले जाती हैं, वहां कोई अन्त नहीं है, वहां कितना ही खोजा जाय, कभी अन्त पर नहीं पहुंचेंगे। इस दुनिया के अन्त पर अभी कोई नहीं पहुंचा है और कभी कोई नहीं पहुंचेगा। ऐसी कोई जगह नहीं हो सकती जहां दुनिया का अन्त होता हो, क्योंकि फिर क्या होगा ? ऐसी कोई जगह नहीं है, जहां दुनिया अन्त होती हो। इसका अर्थ हुआ, इन्द्रियां ऐसी यात्रा पर मनुष्य को ले जाती हैं, जिसका कोई अन्त नहीं है। और जिसका कोई अन्त नहीं होगा, उपलब्धि कैसे हो सकती है ? जिसका कोई अन्त नहीं है, वहां पहुंचना कैसे हो सकता है ? और जिसका कोई अन्त नहीं है, वहां पूर्णता कैसे हो सकती है ?

सबसे पहले जिनका विवेक और जिनका विचार जाग्रत है, वे अपने भीतर खोजेंगे। उसके बाद ही बाहर निकलेंगे। लेकिन मैंने आपसे कहा, जो भीतर खोजता है, उसे बाहर निकलने की जरूरत नहीं रह जाती। क्योंकि जिसकी तलाश थी, उसे वह मिल जाता है।

यह भीतर खोजने के विज्ञान का नाम ध्यान है। कैसे हम अपने भीतर खोजेंगे, उसकी पद्धति का नाम ध्यान है। ध्यान से मेरा अर्थ

प्रार्थना नहीं है। प्रार्थना किसी और से की जाती है। ध्यान किसी और से नहीं किया जाता है। प्रेयर और मेडीटेशन में जमीन आसमान का भेद है। प्रार्थना और ध्यान में जमीन आसमान का भेद है। प्रार्थना किसी से की जाती है। ध्यान किसी से किया नहीं जाता। ध्यान का दूसरे से कोई सम्बन्ध नहीं है। ध्यान तो स्वयं का परिवर्तन है। ध्यान तो स्वयं के चित्त को इतना निर्दोष, इतना शान्त, इतना शून्य बना लेने का नाम है, कि वहां चित्त की भीड़ इतनी शान्त हो जाय कि उससे कोई लहर का कम्पन न उठता हो। उस शान्त दर्पण जैसी झील में सत्य के प्रतिबिम्ब को पकड़ा जा सकता है। प्रार्थना ध्यान नहीं है और प्रार्थना मूल अर्थ भी नहीं रखती साधना का। प्रार्थना तो अक्सर हमारी वासनाओं का ही रूपांतरण है। क्योंकि प्रार्थना में अक्सर हम मांगते हैं। ध्यान में कुछ मांगा नहीं जाता। और प्रार्थना में हम परमात्मा की स्तुति करते हैं। हम बड़े नासमझ हैं। हम सोचते हैं कि परमात्मा की प्रशंसा से आनंदित होता होगा। हम परमात्मा की कल्पना इन्हीं छोटे-छोटे लोगों की तरह करते हैं, जो प्रशंसा से प्रशंसित होते हैं, और निन्दा से निन्दित हो जाते हैं। हमने परमात्मा की कल्पना आदमी के शकल में ही कर ली है। और हम सोचते हैं जिन-जिन बातों से आदमी प्रशंसित होता है और आनंदित होता है उनसे परमात्मा भी होता होगा।

सारी दुनिया में परमात्मा की प्रार्थना स्तुति में की जाती है जो कि बिल्कुल ना समझी की बात है। परमात्मा की प्रार्थना करने से कोई अर्थ नहीं है, कोई प्रयोजन नहीं है। हां, ध्यान करने से व्यक्ति जरूर परमात्मा को उपलब्ध होता है। ध्यान करने से जरूर व्यक्ति परमात्मा को उपलब्ध होता है, प्रार्थना करने से नहीं। परमात्मा

को खुश नहीं किया जा सकता। क्योंकि जिसे दुखी नहीं किया जा सकता, उसको खुश भी नहीं किया जा सकता। जिसे परेशान नहीं किया जा सकता, उसे प्रसन्न भी नहीं किया जा सकता। उसे किसीके पक्ष में आन्दोलित नहीं किया जा सकता, क्योंकि उसे किसीके विपक्ष में नहीं किया जा सकता। जो लोग प्रार्थना करते हों और सोचते हों, वे लोग डूब जायेंगे, जो प्रार्थना नहीं करते हैं, तो बड़े नासमझ हैं।

परमात्मा, आपकी प्रार्थनाओं से आन्दोलित नहीं होता। आपकी क्षुद्र कामनाओं से आन्दोलित नहीं होता। लेकिन् अगर आपके भीतर परिवर्तन हो जाय। आपकी चेतना समग्रीभूत रूप से परिवर्तित हो जाय, ट्रांसफर्मेशन हो जाय तो आप परमात्मा से जरूर संबंधित हो जाते हैं। क्योंकि हममें—आप और परमात्मा के बीच कोई फासला और दूरी नहीं रह जाती। क्योंकि उस क्षण में आप जानते हैं कि आप स्वयं परमात्मा के हिस्से हैं। और यह दुःखद है, कि जो परमात्मा का हिस्सा है, वह परमात्मा के चरणों पर सिर टेके। यह परमात्मा को ही परमात्मा की प्रार्थना करवाना बिल्कुल नासमझी है।

प्रार्थना इसलिए ध्यान नहीं है। ध्यान बड़ी दूसरी बात है। उस सम्बन्ध में आज मैं सुबह आपसे कहना कुछ चाहता हूं। ध्यान क्या है? इसके पहले कि मैं कहूं कि ध्यान क्या है, कुछ बातें बता दूं कि ध्यान क्या नहीं है। मैंने पहली बात कही कि प्रार्थना ध्यान नहीं है। दूसरी बात आपसे कहूं, एकाग्रता ध्यान नहीं है, कंसट्रेशन ध्यान नहीं है। साधारणतः समझा जाता है कि चित्त को समग्र कर लेना ध्यान है। एकाग्रता ध्यान नहीं है। एकाग्रता बड़ी छोटी बात है। एका-

ग्रता में भी बाहर एक बिन्दु शेष रह जाता है जिसको हम मन को एकाग्र करते हैं। एकाग्रता में भी हम बाहर ही होते हैं, भीतर नहीं होते। क्योंकि एकाग्रता में किसी नाम पर, किसी प्रतिमा पर और किसी विचार पर, किसी विचार पर, किसी शब्द पर, किसी मन्त्र पर, किसी रूप पर हम अपने को एकाग्र करते हैं। एकाग्रता का मतलब है, चित्त अभी बाहर से जुड़ा है। एकाग्रता संसार का हिस्सा है, साधना का हिस्सा नहीं है।

ध्यान बड़ी दूसरी बात है। इसलिए जो सोचते हों कि चित्त को एकाग्र कर लेंगे तो ध्यान हो जाएगा, तो गलत सोचते हैं। ध्यान का अर्थ है, बाहर से कोई सम्बन्ध न रह गया। बाहर से असंबंधित हो जाने का नाम ध्यान है। एकाग्रता तो बाहर से संबंध है। तो ध्यान का अर्थ हुआ, चित्त की बाहर के जगत में कोई गति न रह जाय। चित्त बाहर न जाता हो। चित्त का व्यापार बाहर न चलता हो। चित्त का कोई व्यापार न चलता हो। चित्त बिलकुल निस्पंद हो जाय, चित्त बिल्कुल शून्य हो जाय। चित्त की कोई गति न रह जाय। चित्त अगति को उपलब्ध हो जाय। उस अवस्था को पंतजलि ने निरोध कहा है। चित्त अगति को उपलब्ध हो जाय। कोई गति कोई व्यापार, कोई निस्पंदन न रह जाय। उस निस्पंद क्षण में; उन ठहरे हुए क्षण में, उस रुके हुए क्षण में जब सब रुक गया हो। भीतर कोई चीज चलायमान न हो। सब ठहर गयी हों बातें। सब ठहर गया हो। थम गया हो। उस अवस्था का नाम ध्यान है।

ध्यान एकाग्रता नहीं है, ध्यान शून्यता है।

शून्यता में कोई बिन्दू नहीं रह जाता, जहां हम टिकते हों। कोई आधार नहीं रह जाता। सब निराधार रह जाता है।

एकाग्रता को जो लोग ध्यान समझ लेते हैं, उनके लिए ध्यान एक तरह का दमन, एक तरह का सप्रेशन, एक तरह की जबरदस्ती हो जाती है। वह अपने मन को जबरदस्ती कहीं लगाने की कोशिश करते हैं, और ऐसे लोग बड़ी मुश्किल में हो जाते हैं। जबरदस्ती मन को जो कहीं लगाने की कोशिश करेगा, वह मन को जीत नहीं पाता। मन से ही हार जाता है। और तब उसे ऐसा लगता है, मेरे पापों के कारण न मालूम क्यों मेरी स्थिति खराब है। इसलिए मुझे ध्यान उपलब्ब नहीं होता। वह गलत रास्ते पर चल रहा है। इसलिए ध्यान उपलब्ध नहीं हो रहा है। वह अपने हाथ से ही गलत कर रहा है। मन के भीतर जो व्यक्ति द्वन्द करेगा, कांफ्लिक्ट करेगा। लड़ेगा, वह अपने को दो हिस्सों में तोड़ रहा है। जिससे लड़ रहा है, वह भी वही है, और जो लड़ रहा है वह भी वही है। अगर मैं अपने इन दो हाथों को लड़ाऊं तो कौन जीतेगा? अगर मेरे ये दोनों हाथ लड़ें और मैं अपनी सारी ताकत लगा दूं। इन दोनों हाथों को लड़ा देने में कौन जीतेगा? कोई जीतेगा? इन दोनों में से कोई नहीं जीत सकता क्योंकि दोनों हाथ मेरे हैं। और इन दोनों के लड़ाने में इतना होगा कि मेरी शक्ति ह्रास होगी और मैं कमजोर होता जाऊंगा। यह हाथ हारेंगे, जीतेंगे नहीं। मैं हार जाऊंगा।

जो व्यक्ति मन के भीतर लड़ाई शुरू कर देता है। मन के किसी हिस्से से स्वयं लड़ने लगता है, मन को दो हिस्सों में बांट कर लड़ाने लगता है। वह दो हाथ लड़ा रहा है। उन दोनों में से कोई नहीं जीतेगा। वह क्षीण और कमजोर हो जायेगा और ह्रास हो जायेगा।

तिब्बत में एक साधु था मिलारेपा। वह एक मन्दिर में ठहरा हुआ था। वह बड़ा शान्त और सीधा साधु था। लेकिन उसके बाबत लोगों में यह प्रचार था कि उसको बड़ी सिद्धियां उपलब्ध हैं। और अगर वह आशीर्वाद भी दे दे किसी को, तो उसे भी सिद्धियां उपलब्ध हो जाती हैं। वह तो बड़ा शान्त और सीधा आदमी था। उसे सिद्धियों का कोई पता भी नहीं था। लेकिन एक आदमी उसके पास आया एक रात और उसके पैर पकड़ लिये। और उसने कहा, मुझे तो सिद्धि चाहिए। मैं बहुत दुःखी और पीड़ित हूं। मुझे कोई मंत्र चाहिए जो सिद्धि हो जाय तो मेरी सारी दुःख पीड़ा अलग हो जाय उस साधु ने कहा, मैं तो कुछ जानता नहीं। मन्त्र जब मैं साधु नहीं हुआ था तो याद भी थे, जब से साधु हुआ, वह भी भूल गया। पहले भगवान का नाम भी जानता था, जबसे साधु हुआ वह भी छूट गया पहले कुछ मन में चिन्तन भी करता था। जबसे साधु हुआ वह भी छूट गया। पहले कुछ धर्मशास्त्र भी बांध कर चलता था, जब साधु हुआ उनको नदी में डाल दिया। अब अपने पास कुछ भी नहीं है मैं खाली आदमी हूं। मुझे कहो तो मैं तुम्हारे साथ चलूं। बाकी और कुछ भी मेरे पास देने को नहीं है। उस व्यक्ति ने पीछा नहीं छोड़ा। वह बोला कि मैं यहीं बैठा रहूंगा। कल भूखा रहूंगा। तब तक नहीं उठूंगा जब तक कि मुझे मन्त्र न दे देंगे। वह साधु बड़ा हैरान हुआ। अन्ततः उसने एक कागज पर एक चार पंक्तियां लिखकर दीं और उसको कहा कि तुम यह ले जाओ और रात एकान्त में बैठकर पांच दफे इनका पाठ कर लेना। जैसे ही तुम इनका पांच दफा पाठ पूरा कर लोगे, तुममें कुछ शक्तियां जाग जायेंगी। फिर तुम इन शक्तियों से जो चाहो करा लेना। वह आदमी कागज लेकर भागा।

वह पैर छूना भूल गया। वह जाते वक्त धन्यवाद देना भी भूल गया। क्योंकि उसे ख्याल भी न रहा कि धन्यवाद भी देना है। लेकिन वह सीढ़ियां उतर रहा था तो साधु ने कहा, ठहरो-ठहरो, दो भूलें हो गयीं। तुमने मुझे धन्यवाद नहीं दिया। और एक शर्त मुझे बतानी थी वह मैं नहीं बता पाया। तुम मुझे धन्यवाद नहीं दे पाये। और एक शर्त मुझे बतानी थी वह मैं नहीं बता पाया। एक शर्त मुझे मेरे गुरु ने कही थी कि इस मन्त्र को पढ़ते वक्त बन्दर का स्मरण नहीं आना चाहिए। तो पांच दफा पढ़ना लेकिन बन्दर का स्मरण न आये। वह आदमी बोला। मुझे कभी जीवन में बन्दर का स्मरण नहीं आया है। तो इसको पांच दफा पढ़ने में आयेगा? वह भागा लेकिन वह पूरी सीढ़ियां भी नहीं उतर पाया कि बन्दर का स्मरण आना शुरू हो गया। मन्दिर की बड़ी सीढ़ियां थीं वह जब नीचे उतर कर आया तो उसने देखा कि उसके मन में तो बन्दर का ख्याल और चित्र आ रहा है। वह बहुत घबड़ाया। उसने उसको बहुत छितरने की, हटाने की कोशिश की। लेकिन जैसे-जैसे वह हटाने लगा, और भी बन्दर उसे याद आने लगे। वह घर पहुंचते-पहुंचते बन्दरों की भीड़ से घिर गया। उसके मन में बन्दर ही बन्दर हो गये। वह बहुत घबड़ाया। उसने कहा, यह क्या पागलपन है? इस साधु ने कैसी नासमझी की। भूल गया था तो भूल ही जाता। उस शर्त को न बताता। उसने रात भर कोशिश की। बार-बार स्नान किया। बार-बार भगवान की प्रार्थना की। बार-बार बैठा। कोई प्रयोजन हल न हुआ। उसके मन में बन्दर-ही-बन्दर हो गये। वह सुबह वापस आया। उसने वह मन्त्र कागज का लौटा दिया साधु को। और कहा, इस जन्म में अब असम्भव है। अब अगले जन्म में

ही संभव हो सकता है। वह भी तब जब शर्त न बताइयेगा।

और यह सच है। उसको यह कैसे हुआ? ऐसे ही आप सबको होता है। रोज होता है। जिन विचारों को आप निकालना चाहते हैं वही विचार आने लगते हैं। यह स्वाभाविक है। जिनको आप धक्के देते हैं उनको आप आमन्त्रण दे रहे हैं। जिसको न बुलाना हो उसको कभी धक्का न देना। जिसे धक्का दिया। वह आयेगा। यह नियम है। जितने जोर से धक्का देंगे उतने तीव्र वेग से वह लौटेगा।

अभी हम एक पहाड़ पर थे। मेरे साथ कुछ मित्र थे। कुछ बहनें थीं। वहां एक जगह देखने गये। एक इकप्वाइंट था। वहां हम जो आवाज करते पहाड़ से वह उतने ही वेग से वापस लौट आती। किसी ने रास्ते में मुझे कहा, बहुत सुन्दर जगह थी। मैंने कहा, पूरी दुनिया ऐसी जगह है। हम जो आवाज करते हैं, वही लौट आती है। हम जितने जोर से आवाज करते हैं उतने जोर से लौट आती है। और धीरे-धीरे हम अपनी ही आवाजों से भर जाते हैं। परेशान और हैरान हो जाते हैं। हर आदमी पीड़ित है, उन विचारों से जिनको उसने धक्के दिये। और हर आदमी उन वासनाओं से पीड़ित है, जिनको कि हटाया है। और कोशिश की है कि दूर हट जाओ। हम जितने जोर से धकाते हैं, उतने ही हम उन्हीं से घिरते चले जाते हैं। एक दिन हम पाते हैं, अपने हाथों फांसी लगा ली है। चारों तरफ वे ही शत्रु इकट्ठे हैं, जिन जिनको हमने अलग करना चाहा था। और उन मित्रों का पता नहीं चलता जिनको हमने चाहा था कि वे रुक जायं।

जिसको आप रोकना चाहते हैं, वह विलीन हो जाता है।

जिसको आप हटाना चाहते हैं वह चला आता है। नियम जीवन के चित्त का यही है। जिसको हटाना है उसको रोक लें और देखें। और जिसको बुलाना हो उसको धक्के दें और हटायें। विचारों को विसर्जित करना हो। चित को खाली करना हो तो विचारों को धक्के न दें। रोकें और देखें। जिस विचार से मुक्त होना हो, उसको रोक लें पकड़ कर, और पूरी ताकत से उसे देखें। और आप पायेंगे, जैसे-जैसे आपकी दृष्टि गहरी होगी और तीक्ष्ण होगी वह विचार पिघल जायेगा। जैसे सूरज के उगने पर घास के ऊपर पड़े हुए ओस के कण विलीन हो जाते हैं। जैसे उत्ताप ओस बना देता है। ओस को भाप बना देता है वैसे ही दृष्टि की तीक्ष्णता विचारों को हवा कर देती है। उनको वाष्पीभूत कर देती है। वह इव्हायोरेट हो जाते हैं। न एकाग्रता करनी है, न संघर्ष करना है। दृष्टि को पैना और तीखा करना है। दर्शन की क्षमता को विकसित करना है। अगर हम विचारों की तरफ दर्शन की क्षमता को विकसित कर सकें। अगर हम उनको देखने में समर्थ हो जायं। अगर कोई विचार पूरा का पूरा अणु-अणु देख लिया जाय। तो वह विचार तत्क्षण मर जाता है।

दर्शन विचार की मृत्यु है और दर्शन ध्यान का प्राण है। एकाग्रता नहीं। दर्शन ध्यान का प्राण है। अपने सारे विचारों को उघाड़ ले। एक घण्टा आधा घण्टा। चौबीस घण्टे की दौड़ में रुक जायं। एकान्त में ठहर जायं। द्वार बन्द कर लें। अकेले हो जायं। अपने सारे विचारों को कहें। आओ। उनको निमन्त्रण दे दें कि आओ। और अपने को संयत कर लें कि मैं लड़ूंगा नहीं। किसी विचार के पीछे नहीं जाऊंगा। किसी विचार का अनुगमन नहीं

करूंगा। किसी विचार का विरोध नहीं करूंगा। मात्र दर्शक की भांति बैठा और देखता रहूंगा। कुछ भी नहीं करूंगा। बस देखता रहूंगा बैठकर। जो भी विचार आयेंगे उनको देखता रहूंगा। धीरे से यह बात सधेगी। क्योंकि हमारी आदतें खराब हैं। हमें सिखाया जाता है कि बुरे विचार अलग करो। भले विचार पकड़ो। हमारी नैतिक शिक्षा यह है, कि बुरे विचार को मत पकड़ना। भले विचार को पकड़ लेना। यह ऐसे ही हैं जैसे कोई कहे सिक्के के एक पहलू को रख लेना, और दूसरे पहलू को फेंक देना। एक पहलू को पकड़ेंगे और दूसरे को फेंकेंगे। बड़ी दिक्कत में पड़ जायेंगे। सिक्का या तो पूरा बचता है, या पूरा फेंका जाता है। उसमें से आधा बचाया नहीं जा सकता। बुरे और भले विचार एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। इनमें से एक को बचाना और दूसरे को फेंकना संभव नहीं है। जो बुरे को हटायेगा और भले को रोकेगा वह बुरे से पीड़ित रहेगा। वह बुरे से मुक्त नहीं हो सकता। क्योंकि वह काम ही गलत कर रहा है। वह तो अनिवार्य हिस्से हैं। एक दूसरे से जुड़े हैं। पूरे विचार को फेंका जा सकता है। शुभ और अशुभ दोनों चले जायेंगे और तब जो शेष रह जाता है, वह दिव्य है। वह न शुभ है। न अशुभ है। वह डिवाइन है। उसका शुभ अशुभ से कोई नाता नहीं।

वह स्थिति धर्म की है, जब कोई शुभ अशुभ नहीं रह जाता। और दोनों से शून्य चित्त रह जाता है। उसकी जो चर्या है वैसे शून्य चित्त का वही पुण्य है। यह जो मैंने आप से कहा। शुभ विचार उठे, अशुभ विचार उठे कुछ विचार न करें। क्या शुभ है, क्या अशुभ है, दोनों को सिर्फ देखें।

तो ध्यान का पहला अंग है दर्शन को विकसित करना। देखने

को विकसित करना। गहरी दृष्टि विकसित करना। हम तो ऐसे लोग हैं, दृष्टि हमारी इतनी फीकी है। हमें उसे गहरा करने का कोई पता नहीं कि वह कैसे गहरी हो जाय। हम इस जगत को भी बहुत उथला-उथला देखते हैं।

मेरे पास में लोगों को देखता हूं। आप दरख्तों के नीचे से निकल जायेंगे और आपको दिखायी नहीं पड़ेंगे। फूलों के पास से निकल जायेंगे, वह आपको दिखायी न पड़ेंगे। लोगों में से आप निकल जायेंगे। वह आपको दिखाई न पड़ेंगे। आपकी दृष्टि बड़ी उथली है। आप देखते ही कहां हैं? किसी तरह भागे जा रहे हैं। जो दिख जाता है, दिख जाता है। देखना बड़ी दूसरी बात है। उसके लिए ठहरना, रुकना जरूरी है। उस अभ्यास को करने के लिए देखना संभव होता है। बाहर के जगत में भी देखने की क्षमता को विकसित किया जा सकता है। कभी दस पांच क्षण को किसी फूल के पास बैठ जाएं और चुपचाप देखते रहें। सोचें मत। गुलाब का है, कि जूही का है, कि किसका है। सोचें मत। सिर्फ देखते रहें। कुछ न करें। सिर्फ देखें और इतना ख्याल रखें, कि मुझे सिर्फ यह गुलाब दिखाई पड़ रहा है। और मैं कुछ भी नहीं कर रहा हूं। कभी चांद को देखना हो, चुपचाप देखते रह जायं। कभी आकाश को देखें और चुपचाप देखते रह जायं। कभी किसी व्यक्ति के चेहरे को देखें और चुपचाप देखते रह जायं। कभी समुद्र के किनारे बैठें और चुपचाप देखते रह जायं। कुछ सोचें न। कुछ विचारें न। सिर्फ देखें। धीरे धीरे देखने की क्षमता आप में विकसित होगी। फिर वैसे ही अपने भीतर आंख बन्द करके विचार को देखें। जैसा पदार्थ को देखा है वैसा विचार को देखें। विचार भी पदार्थ की प्रतिध्वनि

है। वह बाहर के जगत में जो कोलाहल है उसका ही सुना हुआ स्वर है। जो हमारी इन्द्रियां बाहर के जगत में मांगती हैं निरन्तर, जो उन्हें उपलब्ध नहीं होता है, उसकी आकांक्षाएं विचार में हैं। जो उपलब्ध हो जाता है, उसकी प्रतिछवियां विचार में हैं। बाहर इंद्रियों का जो कोलाहल है, उसके ही रेफलेक्शन, उसके ही संस्कार, उसकी ही ध्वनियां भीतर इकट्ठी हो गयी हैं। यही विचार है।

मैंने सुना है, एक भवन में कुत्ता और बिल्ली दोनों एक साथ पाल लिये गये थे। एक सुबह उस बिल्ली ने उठकर कहा, आज रात तो अद्भुत हुआ। मैंने स्वप्न देखा, इस वर्ष, वर्षा में पानी नहीं, चूहे गिरेंगे। वह कुत्ता बोला, बिल्कुल नासमझी की बात है। न किसी शास्त्र में कभी लिखा है यह, न पुराणों में कभी इसकी कथा सुनी है। न किसी इतिहास में इसका उल्लेख है कि चूहे गिरे हैं। हां, ऐसे उल्लेख जरूर हैं जब वर्षा में हड्डियां गिरीं और पानी नहीं गिरा। उसने कहा, मैं भी स्वप्न देखता हूं। कभी यह नहीं देखा कि चूहे गिरते हैं, हड्डियां गिरती हैं। उस कुत्ते ने ठीक ही कहा। उसकी जो प्रतिध्ननियां हैं, जगत के प्रति वह हड्डियों की हैं। बिल्ली ने ठीक ही देखा। उसकी जो प्रतिध्वनियां हैं जगत में वह चूहे की हैं।

हमारी इन्द्रियों का जो बाहर के जगत में व्यापार चल रहा है, उनकी ही सारी प्रतिध्वनियां इकट्ठी होकर भीतर विचार बन जाती हैं, स्वप्न बन जाती हैं। यह सारा का सारा जो भीतर कोलाहल है, इसको भी बाहर के जगत का हिस्सा समझें हैं। इसको भी वैसे ही देख रहे हैं जैसे बाहर के जगत को देखते हैं। जैसे यह खम्भा है, मकान है, और रास्ते हैं, और लोग हैं, वैसा ही अपने भीतर भी जानें

कि इस खम्भे की छाया है, लोगों की छायाएं हैं सड़कों की छायाएं हैं। वह भी बाहर के जगत के प्रतिफलन हैं। वहां भी चुप बैठ जायं और देखें। एक असली दुनिया बाहर है। एक उस असली दुनिया में आधा कर-कर हमारे भीतर एक नकली दुनिया पैदा कर दी। उस नकली दुनिया का नाम विचार है। वह जो विचार भीतर पैदा हुआ है, वही बाधा है। यह बाहर का जगत बाधा नहीं है परमात्मा के पाने में। वह जो भीतर प्रतिध्वनि पैदा हुई है जगत की, वह बाधा है। और कुछ नासमझ हैं जो इस बाहर के जगत को छोड़ने को संन्यास समझ लेते हैं। वे गलती में हैं। यह बाहर के जगत को छोड़ करके जाओगे कहां? यह बाहर के जगत को छोड़कर जाओगे कहां? ऐसी कोई जगह नहीं है, जहां बाहर का जगत न हो। जो भी जगह होगी वह जगत के भीतर होगी। बाहर के जगत को छोड़ने को जो संन्यास और साधना समझ लेता है, वह गलती में है। इसे छोड़कर जायेंगे कहां? इसे नहीं छोड़ा जा सकता। हां भीतर का जो जगत है, उसे छोड़ा जा सकता है।

तो मैं यह नहीं कहता कि जिसने संसार को छोड़ दिया वह संन्यासी है। मैं कहता हूं, जिसके भीतर संसार नहीं है वह संन्यासी है। जिसके भीतर यह संसार नहीं है विचार का वह संन्यासी है। जिसने भीतर इस जगत को गिरा दिया, जो भीतर अकेला है, और बाहर जगत है, और बीच में दोनों के कुछ भी नहीं है। वह आदमी संन्यासी है। जिसके और संसार के बीच में कुछ भी नहीं है वह आदमी संन्यासी है। और जब दोनों के बीच में कुछ भी नहीं रह जाता तब यह संसार संसार नहीं रह जाता। परमात्मा का रूप हो जाता है। तब उस खाली स्थान में जो दिखायी पड़ता है, तब

वह स्वयं परमात्मा है। यह तो सारा जगत तब प्रभु चैतन्य से व्याप्त हो जाता है। तब यह कण-कण उसके ही आनन्द से आन्दोलित है। और तब यह हवाएं उससे ही प्रवाहित, और यह सारा प्रकाश उससे ही अद्‌भुत, और यह सारा जगत उसका ही आनन्दमग्न नृत्य हो जाता है। यह उसके ही संगीत की स्फुरणा हो जाता है। लेकिन तब, जब भीतर हमारे कोई जगत न हो।

वह जो भीतर जगत है उसे नष्ट करना है, उसे विलीन करना है। उसे विलीन करने का जो उपाय मैंने कहा, पहली बात तो उपाय के लिए यह है कि हम अपने विचार के साक्षी, दर्शक, द्रष्टा, उसके देखने वाले बनें। और दूसरी बात यह है जो सहयोगी और उपयोगी है। एक तो यह करें, चौबीस घण्टे में थोड़े समय को विचार के दर्शक हो जायं। क्रमशः थोड़े दिनों के अभ्यास में दिखायी पड़ने शुरू होंगे। और थोड़े अभ्यास में वे गिरते हुए दिखाई पड़ेंगे। थोड़े अभ्यास में वे शून्य होते मालूम होंगे। एक तो यह करें। और उतनी ही देर को एक दूसरा प्रयोग भी साथ में चलायें। एक घण्टे में से आधा घण्टा दर्शन का प्रयोग। और आधा घण्टा मैं कहता हूं, मृत्यु का प्रयोग करें।

जिस व्यक्ति को ध्यान साधना हो उसे मरना सीखना होता है। मरते सारे लोग हैं। लेकिन सीखकर बहुत कम लोग मरते हैं। और जो मरने को सीख लेते हैं, अद्‌भुत होता है, उन्हें घटना घटती है। जो मरने को सीख लेते हैं, फिर मृत्यु उनकी नहीं होती है। जो अपने हाथ से मृत्यु को सीख लेता है, वह जान जाता है। उसके भीतर कोई तत्व है जिसकी कोई मृत्यु नहीं है। और जो अपने हाथ से मृत्यु को नहीं साधता, उसकी मृत्यु बार-बार घटित

होती है। और अमृत से वह परिचित नहीं हो पाता। ध्यान एक तरह की मृत्यु साधना है। अपने हाथ से मरना। आधा घड़ी को कभी रात के किसी एकान्त कोने में मर जायं। आप कहेंगे कि यह हमारे वश में कैसे कि हम मर जायं।

मैं आपको कहूं, यह हमारे वश में है। मरा जा सकता है। मरने के लिए ऐसा करें द्वार बन्द कर लें। सब तरफ से द्वार बंद कर लें। लेट जायं, शरीर को ढीला छोड़ दें। आंख बन्द कर लें, और यह कल्पना करें कि आप मर गये। समझ लें कि आप मर गये। आपकी अन्तिम घड़ी आ गयी। आपके प्राण निकल गये। और तब सोच लें कि जब आप सच में मरेंगे तो कौन से लोग आपके आस पास इकट्ठे हो जायेंगे। आपके मित्र, आपके प्रेम करने वाले, आपके सम्बन्धी, आपके पड़ोसी, वह सब आने लगेंगे। आप मर रहे हैं, मुहल्ले में, पड़ोस में खबर पहुंच गयी कि आप मर चुके। लोग आने शुरू हो जायेंगे। वह लोग आ जायेंगे, कमरे में उनकी कल्पना की भीड़ आने लगेगी। आपको उनके चेहरे दिखायी पड़ने लगेंगे। सब सारे लोग आ जायें तो फिर आपकी अर्थी उठेगी। उसको भी उठते हुए देखें कि लोगों ने आपकी लाश को बांध दिया। वह आपकी अर्थी को कन्धों पर ले चले। रास्ते से आपका गुजरना शुरू हो गया। और उस मरघट तक पीछा करें अपनी इस लाश का। अब मरघट पर पहुंच गये और चिता जला दी गयी और आपकी लाश उस पर रख दी गयी। सब राख हुआ जा रहा है। इसका निरन्तर अभ्यास करने पर एक दिन आप पायेंगे कि सब जल गया है। और आप बिना शरीर के अपने को अनुभव करें। निरन्तर अभ्यास करने से किसी दिन आप अचानक होश से मर जायेंगे और पायेंगे, सब जल गया है। और

आप बिना शरीर के हैं। और जब शरीर पूरा जल जायेगा तो आप अचानक पायेंगे कि आपके सारे विचार शून्य हो गये हैं। क्योंकि सारे विचारों को जन्म इस शरीर के माध्यम से मिलता है। इन इन्द्रियों के द्वार से सारे विचार बाहर से आते हैं। अगर ये राख हो गयीं तो इनका सारा संसार भीतर गिर जाता है। उनके उस संसार के प्राण इंद्रियों के भीतर हैं। और तब आप अपने को विदेह अनुभव करेंगे। निर्विचार अनुभव करेंगे।

इन दो प्रयोगों को अगर क्रमशः साधते चले जायं तो आप ध्यान को साध रहे हैं——दर्शन की साधना और मृत्यु की साधना। और जिस दिन दर्शन और मृत्यु की पूर्णता आपको अनुभव होगी उस दिन आपको परम सत्य का साक्षात् हो जायेगा। उस दिन आप पायेंगे, जो भी आपमें मरणधर्मा था, वह मर गया है। और जो भी अमृत था, वही केवल शेष रह गया है। विचार तब शून्य हो जायेंगे, दर्शन शेष रह जायेगा। उस दर्शन में जब अमृत का अनुभव होता है, तो व्यक्ति सत्य का साक्षात करता है।

मैं प्रार्थना को नहीं कहता। इस तरह के ध्यान को कहता हूं। और अगर एक दफा आपको अपने भीतर स्वयं की सत्ता में किसी अमृत, किसी परम, किसी चैतन्य सत्ता का बोध हो जाय, तो तत्क्षण सारे लोगों के भीतर उसका बोध होना आपको शुरू होता है। जब तक आप अपने को शरीर जानते हैं तब तक दूसरे लोग भी आपको शरीर दिखायी पड़ रहे हैं। तब तक यह सारा संसार प्रकृति दिखायी पड़ रहा है। जिस दिन आप अपने शरीर के भीतर उसे जानेंगे जो कि शरीर नहीं, आत्मा है उस दिन सारे शरीरों के भीतर आपको आत्मा दिखायी पड़ने लगेगी। उस दिन सारी प्रकृति

के भीतर आपको परमात्मा दिखायी पड़ने लगेगा। जितनी गहरी हमारी अपने भीतर पहुंच होती है, उतनी ही गहरी हमारी समस्त के भीतर पहुंच हो जाती है। उतनी ही गहरी हमारी पहुंच समस्त के भीतर हो जाती है। जो अपने भीतर अन्तिम बिन्दु को पकड़ लेता है, वह सर्व सत्ता के भीतर अन्तिम विन्दु को पकड़ने में समर्थ हो जाता है।

इसलिए मैं कहता हूं, स्वयं के भीतर द्वार है, परम सत्य को अनुभव करने का। और यह शून्य और मृत्यु, दर्शन और परिपूर्ण इन्द्रियों के मर जाने की जो क्षण स्थिति है, उसमें वह बोध उत्पन्न होता है। ऐसा मैं वैज्ञानिक मानता हूं कि ऐसी वैज्ञानिक विधि से अगर कोई प्रयोग करे तो शीघ्रतम वह उस सत्य को अनुभव कर पायेगा, जिसकी शास्त्र दुहाई देते हैं। लेकिन जिसे शास्त्र पढ़कर नहीं समझा जा सकता। जिसके सद्‌गुरु प्रवचन करते हैं, लेकिन जिसे प्रवचन से नहीं समझा जा सकता। जिसकी सारी दुनिया के जाग्रत पुरुष साक्षी देते हैं, लेकिन उनकी साक्षी से नहीं समझा जा सकता। जिसके लिए स्वयं ही साक्षी बनना होगा। स्वयं के अनुभव पर ही प्रमाणित करना होगा। स्वयं को देकर और विर्सजित करके ही उसे पाया जाता है। अपनी ही मृत्यु पर अमृत का अनुभव होता है। उस अनुभव के बाद सारा जीवन परिर्वतित हो जायेगा। उस अनुभव के बाद जीवन में बुराई असंभव हो जायेगी। उस अनुभव के बाद जीवन में हिंसा असंभव हो जायेगी। उस अनुभव के बाद जीवन में घृणा असंभव हो जायेगी। उस अनुभव के बाद जीवन में जो भी सुगन्ध है, जो भी शुभ है, जो भी सत् है, जो भी सुन्दर है, उसकी सहज अभिव्यक्ति शुरू हो जाती है।

जो व्यक्ति भीतर से सत्य का अनुभव करता है, उसका सारा जीवन सौन्दर्य से, शान्ति से और संगीत से भर जाता है। उसका सारा जीवन उन्हीं प्रतिध्वनियों को, उन्हीं तरंगों को प्रवाहित करने लगता है, जो सारे जगत के लिए शान्ति की और शीतलता की छाया बन सकती है। यही प्रार्थना करुंगा परमात्मा से, प्रत्येक व्यक्ति को यह शान्ति और शीतलता का छाया का बड़ा वृक्ष बनाये। उसे खुद छाया मिले और अनेक लोग उसकी छाया से आन्दोलित हों। अनेक लोग उसके आनन्द से प्रभावित हों। अनेक लोग उसके सौन्दर्य से प्रभावित हों। अनेक लोग उसके अन्यथा संगीत से आन्दोलित हों और उनके भीतर प्यास पैदा हो।

एक अन्तिम कहानी, और चर्चा को पूरा करूंगा——

बुद्ध जब पहली दफा सत्य को उपलब्ध हुए तब उनके पास कोई भी नहीं था। वे अकेले थे। वे यात्रा करते थे। अनजान भिखमंगे फकीर थे। तब उन्हें कोई भी नहीं जानता था। वे काशी के बाहर आकर एक वृक्ष के नीचे विश्राम किये। सन्ध्या को जब सूरज ढलता था, तब वे एक झाड़ के नीचे फटे कपड़ों में लेटे हुए थे। काशी का जो नरेश था वह कुछ दिनों से बहुत दुःखी, बहुत चिंतित बहुत पीड़ित था। उसने अनेक बार आत्मघात करने का भी उपाय किया लेकिन असफल रहा। वह सांझ को अपना मन बहलाने को रथ को लेकर गांव के बाहर निकला। सूरज ढलता था, उसकी अन्तिम किरणें बुद्ध की मुख मुद्रा को प्रकाशित करती थीं। वे एक वृक्ष के नीचे आंख बन्द किये लेटे थे। सारथी रथ को हांके जाता था। अचानक उस राजा की दृष्टि भिखमंगे पर पड़ी। उसने सारथी को कहा, रथ रोक लो। यह कौन व्यक्ति यहां लेटा हुआ है? जिसके

पास कुछ भी मालूम नहीं होता। उसके पास सब कुछ कैसे दिखाई पड़ रहा है। उस राजा ने कहा जिस भिखमंगे के पास कुछ भी नहीं दिखायी पड़ता, उसके पास सब कुछ कैसे दिखायी पड़ता है। रथ रोको। मेरे पास सब कुछ है, और मुझे सब कुछ दिखायी नहीं पड़ता। वे उतर कर गये, और उन्होंने बुद्ध को कहा कि क्या मैं पूछूं कि यह अदभुत समृद्ध भिखमंगा कौन है? जो शब्द हैं, वह यह कि यह अद्भुत समृद्ध भिखमंगा कौन है?

बुद्ध ने कहा, एक दिन मैं भी 'दरिद्र समृद्ध था। जो तुम हो। एक दिन मैं भी वहीं था। बहुत मेरे पास था और मेरे भीतर कुछ भी नहीं था। उस राजा ने कहा, मैं बहुत पीड़ित हूं। क्या यह कभी मुझे भी संभव हो सकता है जो तुम्हें संभव हुआ? बुद्ध ने कहा, जो एक बीज के लिये संभव है, वह हर दूसरे बीज के लिए संभव है। हर बीज वृक्ष बन सकता है। जो मुझे फलित हुआ है वह तुम्हें फलित हो सकता है। क्योंकि मनुष्य की आन्तरिक एकता समान है। मनुष्य की आन्तरिक संभावना समान है। लेकिन कुछ करना होगा। उस राजा ने बुद्ध को कहा कि मैं कुछ भी करने को तैयार हूं। मैं कुछ भी खाने को तैयार हूं। क्यों कि सच तो यह है कि जो भी मेरे पास है, उसका मुझे कोई मूल्य नहीं मालूम हो रहा है।

बुद्ध ने कहा, और कुछ खोने से वह नहीं मिलता है, जो स्वयं को खोने को तैयार है, उसे वह मिलता है।

उस स्वयं को खोने को मैंने मृत्यु कहा। जो स्वयं को खोने को राजी हो जाता है वह स्वयं की परम सत्ता को उपलब्ध हो जाता है। यही सूत्र है। जो बीज मिट्टी में अपने को गलाने के लिए राजी नहीं होता। वह बीज कभी अंकुर नहीं बनता। वह बीज सड़

जायेगा। जिसने कोशिश की कि अपने को बचा लें, वह बीज सड़ जायेगा। और उसमें अंकुर पैदा नहीं होगा। और जो बीज अपने को तोड़ देता है और मिटा देता है वह मिट्टी में गल जाता है, उसका कोई पता नहीं चलता कि कहां गया। वह बीज अंकुर हो जाता है।

अंकुरित होने का सूत्र है गल जाना और मिट जाना। और जो जीवन में इस भांति मरने लगे, गलने लगे और मिटने लगे और जो अपने को खो दे वह एक दिन पायेगा उसने स्वयं को पा लिया विराटतर रूपों में। बूंद-बूंद की तरह खो जाती है और सागर बन जाती है। व्यक्ति जब व्यक्ति की तरह अपने को खो देता है तो वह परमात्मा हो जाता है।

इसी सूत्र विचार के साथ अपनी चर्चा को पूरा करूंगा—बूंद जब बूंद की तरह अपने को खो देती है तो वह सागर बन जाती है और व्यक्ति जब व्यक्ति की तरह अपने को मिटा देता है तो वह परमात्मा हो जाता है। ईश्वर आपको यह सौभाग्य दे कि आप मर सकें। मरने के पहले जो मर जाते हैं वे लोग धन्यभागी हैं। मेरी बातों को इतने प्रेम से सुना है इसके लिए बहुत अनुग्रहीत हूं। सबके भीतर बैठे परमात्मा के लिए मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

५. आत्मा का अनुभव

मेरे प्रिय आत्मन,

मैं अत्यंत आनंदित हूं कि जीवन के सम्बन्ध में, और उसके परिवर्तन के लिए थोड़ी सी बातें आप से करूंगा। इसके पहले कि कुछ बातें कहूं, एक छोटी सी कहानी से चर्चा को प्रारम्भ करूंगा।

एक बहुत अमीर आदमी, एक बूढ़ा आदमी अपने एक मित्र के घर मिलने गया था। जब वह वापिस लौटने लगा तो रास्ता अन्धेरा था और अकेला था। उसके मित्र ने कहा, मैं एक लालटेन हाथ में दिये देता हूं, ताकि रास्ते पर साथ दे। वह अन्धा आदमी बोला, मेरे लिए लालटेन का क्या उपयोग होगा? मेरे लिए तो हाथ में लालटेन हो तो न हो तो, दोनों हालतों में रास्ता अन्धेरा ही अन्धेरा है। फिर भी उसके मित्र ने कहा, लालटेन ले के ही जाओ। तुम्हारे लिए तो प्रकाश नहीं होगा लेकिन कम से कम दूसरे लोग समझ सकेंगे कि तुम रास्ते पर हो। और वह टकराने से बच जायेंगे। वह

अन्धा आदमी उस लालटेन को लेकर गया। लेकिन थोड़ी देर बाद ही एक दूसरा आदमी उससे टकरा गया। उस अन्धे आदमी ने पूछा क्या बात है? क्या मेरी लालटेन बुझ गयी है। वह दूसरा व्यक्ति बोला, मुझे दिखायी नहीं पड़ता। लालटेन तो मैं भी लिये हूं। मैं अन्धा हूं। वे दोनों अन्धे थे, और दोनों के हाथ में लालटेन थी, लेकिन दोनों टकरा गये और गिर गये।

हमारी दुनिया की स्थिति करीब-करीब ऐसी हो गयी है। सबके पास अच्छे विचार हैं। सबके पास अच्छे ख्याल हैं। सभी को पता है, ठीक क्या है? लेकिन आंखें न होने से हम सब टकरा जाते हैं और गिर जाते हैं। ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है जिसे यह पता न हो, ठीक क्या है? सद् विचार सभी को पता है। लेकिन आंखें न होने से उनका कोई मूल्य नहीं है। और वह अन्धेरे में अन्धे के हाथ में प्रकाश की तरह सिद्ध होते हैं।

दुनिया में सद् पुरुषों की भी कोई कमी नहीं है। वे भी हमेशा पैदा होते हैं। उनके विचार भी लोगों को उपलब्ध होते हैं। लेकिन हमारे साथ आते-आते वे विचार निष्प्राण हो जाते हैं, और हमारे लिए उनका कोई उपाय नहीं होता। उसका एक ही कारण है। और उसका कारण यह है कि हमारे पास आंखें न हों तो प्रकाश का कोई अर्थ नहीं होता है। इसलिये आज की इस दोपहर में, मैं आपको कोई अच्छे विचार दूं, इसका कोई मतलब नहीं होगा। अच्छे विचार तो बहुत हैं। और मैंने एक अरबी कहावत सुनी है, बड़ी अद्भुत कहावत है। जिसमें यह कहा गया है कि नर्क का रास्ता अच्छे विचारों से पटा हुआ है मैं बहुत हैरान हुआ। नर्क का रास्ता अच्छे विचारों से पटा हुआ है। यह बात बड़ी अजीब मालूम होगी।

लेकिन यह सच है। जो लोग अच्छे विचार ही करते रहते हैं, उनका जीवन नर्क की तरफ ही चला जाता है। अच्छे विचार पर्याप्त नहीं हैं। अच्छे विचारों का कोई मूल्य नहीं है। अच्छे विचारों का मूल्य तो तभी है, जब हमारे पास ऐसी आंख हो, कि वे विचार हमारे आचरण और जीवन में फलित हो जायं। ये जो लोग कहते हैं कि अच्छे विचारों को हमें जीवन में उतारना चाहिए। आचरण करना चाहिए। लेकिन यह भी करीब-करीब वैसी ही बात है, जैसे हम किसी बीमार आदमी से यह कहें कि तुझे अपनी बीमारी छोड़ देनी चाहिए। बीमार आदमी को यह कहने से क्या फायदा होगा कि तुम बीमारी छोड़ दो। बीमारी छोड़ी नहीं जाती। बीमारी का तो उपाय होता है। औषधि होती है, उपचार होता है। वैसे ही बुरे जीवन के आचरण को छोड़ा नहीं जाता। बल्कि अन्तस चेतना का उपचार किया जाता है। तो बुरा आचरण अपने आप छूट जाता है।

एक बात मैं आपको कहूं। अच्छे विचारों को खोज-खोज कर कोई आचरण नहीं ला सकता। आचरण विचारों से पैदा नहीं होता आचरण बहुत ही अलग बात है। और उसके पैदा होने का रास्ता बहुत दूसरा है। अगर अच्छे विचारों से आचरण पैदा होता हो, तो दुनिया सब आचारवान बन गयी होती क्योंकि अच्छे विचारों की कहां कमी है। वे तो अतिशय हैं। वे तो बहुत ज्यादा हैं। लेकिन उनसे कोई मतलब नहीं है। अगर हम बीमारों को यह समझायें कि तुम अपनी बीमारी छोड़ दो, और चिकित्सक केवल इतना समझाने का काम करें कि सबको अपनी बीमारी छोड़ देनी चाहिए। नहीं तो दुनिया बीमारी से मर जायेगी। उपदेश बहुत होंगे, लेकिन

बीमारी दूर नहीं होगी। बीमारी को उपदेश से दूर नहीं किया जाता। यह तो बीमार भी जानता है कि बीमारी बुरी है और अलग होनी चाहिए। लेकिन बीमारी छूटती नहीं है। उसकी तो औषधि होती है। उसका तो मार्ग होता है, उसका तो उपचार होता है। ऐसे ही, जिसे हम बुरा आचरण कहते हैं, वह भी बीमारियों की तरह है। बुरा आचरण भी हमारे आंतरिक मन की बीमारियां हैं। और इन बीमारियों को भी छोड़ने का उपाय नहीं है। इन बीमारियों का भी इलाज हो सकता है। औषधि हो सकती है ऐसी विधि हो सकती है कि ये विलीन हो जायं।

मेरा कहना यही है —मैं आपसे यह नहीं कहता कि आप बुरे काम छोड़ दें। बुरा आचरण छोड़ दें। जीवन की बुरी वृत्तियां छोड़ दें। मैं आपको यह कहता हूं, जैसे कि यहां अन्धकार भरा हो, तो मैं यह नहीं कहूंगा कि अन्धकार को निकाल कर बाहर कर दें। मैं कहूंगा, प्रकाश जलायें, दिया जलायें। अन्धकार अपने से दूर हो जायेगा। जैसे अन्धकार दूर हो जाता है प्रकाश के जलाने से। वैसा ही मनुष्य के आन्तरिक जीवन में भी प्रकाश को जलाने का उपाय है। उसके जलते ही आचरण की बुराइयां दूर होनी शुरू हो जाती हैं। आज तक किसी मनुष्य ने बुराइयों को छोड़ा नहीं है। बुराइयां अपने से विलीन हो जाती हैं और गिर जाती हैं।

ऐसा मनुष्य के आन्तरिक जीवन में प्रयोग किया जा सकता हैं। मनुष्य की अन्तस चेतना को इस भांति प्रज्ज्वलित किया जा सकता है। इस भांति प्रकाश से भरा जा सकता है, कि उसका सारा जीवन परिवर्तित हो जाय।

यह जो मैं कह रहा हूं, यह जो मेरी दृष्टि है कि मनुष्य के

भीतर कोई क्रान्ति और परिवर्तन हो सकता है, जिससे उसका सारा आचरण बदल जाय। इस विचार को समझ लेना जरूरी है। अगर यह हमारी समझ में न आये तो यह होगा कि हम जीवन भर अच्छे विचार करेंगे। और सोचेंगे अपने को बदलने की बात लेकिन अपनी बदलाहट सम्भव न होगी। अधिक लोग सारे जीवन पीड़ित होते हैं कि वे शुभ बनजायें। भले बन जायें। और वे जैसे थे वैसे ही समाप्त हो जाते हैं। क्योंकि उन्हें पता नहीं होता कि शुभ कैसे बना जाय? और जो लोग उपदेश देते हैं शुभ बनने का वे ही केवल उपदेश देते हैं कि आपको शुभ हो जाना चाहिए और अगर आप नहीं होते तो आपही को कसूरवार ठहराते हैं, आप ही को दोषी ठहराते हैं और लांछना यही होती है। कि लोग हमारे विचारों को आचरण में नहीं लाते।

मैं आप से यह नहीं कहूंगा। आपका कोई कसूर नहीं है। अगर आप विचारों को आचरण में न ला पाते हों। कसूर इस बात का है कि आपको ठीक से पता नहीं है कि आचरण के बदलने की कीमियां और कुंजी विचार नहीं है। आचरण को बदलने की कीमिया और कुंजी कुछ और है। वह विचार नहीं है। उसका नाम योग है। वह आपके सोच विचार से सम्बन्धित नहीं है। बल्कि आपको अन्तस्चेतना को बदलने का एक विज्ञान है। वह विज्ञान अगर थोड़ा सा समझ में आ जाय तो आप अपने में क्रान्तिकारी फर्क होते अनुभव करेंगे। अचानक आपको दिखायी पड़ने लगेगा। आपका जीवन दूसरा होने लगा।

कुछ दिन हुए, एक व्यक्ति मेरे पास आये। और उन्होंने मुझ से कहा कि मैं कुछ बातें छोड़ना चाहता हूं जीवन भर से। लेकिन छोड़

नहीं पाता हूं। मैंने उनसे कहा, कभी ऐसे लोगों ने जो कुछ छोड़ना चाहते हैं–वे लोग कभी कुछ नहीं छोड़ पाये हैं। आप बहुत परेशान न हों। वे बोले, ये बातें ऐसी हैं। कि मुझे छोड़ना ही है क्योंकि मेरा सारा जीवन नष्ट हुआ जाता है। उन्होंने मुझे कहा कि मुझे तो इतनी परेशानी है, लेकिन मैं शराब पिये चला जाता हूं। मैं इसे छोड़ना चाहता हूं। और आज दस वर्षों से लड़ रहा हूं और जितना लड़ता हूं। उतना ही मैंने पाया कि बढ़ती चली जाती है। छूटती नहीं है। मैंने उनसे कहा, इस जीवन में पूरे लड़ते रहें, तब भी यह छूटेगी नहीं। इसकी फिक्र छोड़ दें। कुछ और करें। मैंने उन्हें अपने निकट बुलाया और उन से कहा, कुछ प्रयोग करें अपने मन पर। क्योंकि मैंने कहा कि वह आदमी शराब पीता है, जो आदमी अशान्त होता है। दुःखी और पीड़ित होता है। जो आदमी आनंदित है वह कभी नशा नहीं करेगा। असंभव है। दुनिया जितनी होती जायेगी उतने लोगों में नशा बढ़ता चला जायेगा। दुख होगा। नशा स्वाभाविक है। उसका परिणाम है। आनन्द होगा। नशा असंभव है। उसका कोई कारण नहीं, उसकी कोई जरूरत नहीं रह जाती। मैंने उनसे कहा––नशे की फिक्र छोड़ दें। शान्त और आनन्दित होने का उपाय करें। उन्होंने कुछ साधना शुरू की, शान्त होने के लिये। और तीन महीने बाद उन्होंने मुझे आकर कहा, मैं तो हैरान हूं। आज मुझे कोई कहें कि पियो, तो मेरी समझ में नहीं आता कि मैं पहले कैसे पीता रहा? तो मैं नहीं पी सकता हूं। अब तो शराब पीना भी मुझे असम्भव है। सारी दुनिया पीड़ित है इस बात से। हम कुछ चीजें छोड़ना चाहते हैं लेकिन हम इस बात को नहीं समझ पाते कि चीजों की जड़ें कहां हैं? उन्हें छोड़ने के

लिए उनके मूल कारणों को तोड़ने का विचार नहीं कर पाते और करीब-करीब ऊपर सारी चेष्टा करते हैं। जैसे कोई व्यक्ति किसी पौधे को नष्ट करना चाहता हो तो उसकी शाखाओं को काट दे। पत्तों को गिरा दे, तो क्या होगा ? कोई शाखाएं काट देने से और वृक्ष गिरा देने से वृक्ष नष्ट नहीं हो पाते। बल्कि जितना वह काटेगा, उतनी नयी शाखाएं निकलने लगेंगी। उससे ज्यादा शाखाएं निकलने लगेंगी। और वह घबड़ायेगा कि मैं रोज वृक्ष को काटता हूं और यह तो वृक्ष है, कि बढ़ता चला जाता है।

बुराई का वृक्ष इस तरह बढ़ता है कि हम उसकी शाखायें काटते हैं और उनकी जड़ों को नहीं जानते। इसलिए पूरे जीवन कोशिश करने के बाद भी आदमी बुराई से मुक्त नहीं हो पाता। मैं उन जड़ों की बात आपसे करूं। जिनको काटने से बुराई गिर जाती है। जिनको काटने से बुराई रह ही नहीं सकती। और उसमें से प्रधान जो जड़ है–जो मनुष्य अपने अन्तस में जितना दुखी होता है उतना उसका जीवन बुरा होता चला जाता है। और जो मनुष्य अपने अन्तस में जितने आनन्द को उपलब्ध होता है उतना उसका जीवन शुभ होता चला जाता है। लोग सोचते हैं कि शुभ होने से आनन्द उपलब्ध होगा और मैं सोचता हूं कि आनन्द उपलब्ध होता है। तो जीवन शुभ हो जाता है। जो व्यक्ति भीतर आनंदित हो उसके लिये असंभव होता है कि वह किसी को दुख दे सके। और पाप का कोई अर्थ नहीं है। पाप का एक ही अर्थ है। ऐसे काम, जिनसे दूसरों को दुख पहुंच जाता है। और पुण्य का एक ही अर्थ है ऐसे काम जिनसे दूसरों के जीवन में सुख पहुंच जाता है।

क्राइस्ट ने एक बहुत अद्भुत वचन कहा है। उन्होंने कहा है,

जो तुम नहीं चाहते कि दूसरे लोग तुम्हारे साथ करें, वह तुम दूसरे लोगों के साथ मत करना। और इस छोटे से वचन में सारे धर्मों का सार आ जाता है अब तक मनुष्यों ने जो भी श्रेष्ठतम विचार किये हैं। जो भी श्रेष्ठतम अनुभूतियां की हैं। वे एक छोटे से वचन में आ जाती हैं। तुम दूसरों के साथ वह मत करना जो तुम नहीं चाहते कि दूसरे तुम्हारे साथ करें।

मैं नहीं कहता, कोई मेरा अपमान करें। तो मुझे दूसरों का अपमान नहीं करना चाहिए। मैं यह नहीं कहता कि कोई मेरे ऊपर क्रोधित हो तो मुझे दूसरों पर क्रोधित नहीं होना चाहिए। अगर इतनी सी बात, इतनी सी व्यवस्था जीवन में सध जाय तो जीवन बहुत सुगन्ध से, बहुत आनन्द से, बहुत संगीत से, भर जाता है। लेकिन यह कैसे सम्भव होगा–यह कैसे सम्भव होगा कि जो मैं चाहता हूं कि मेरे साथ कोई न करें, वह मैं दूसरे के साथ न करूं। यह तभी सभव होगा जब मुझे यह अनुभव हो जाय कि जो मेरे भीतर बैठा है, वही दूसरे के भीतर भी विराजमान है। इसके पहले यह सम्भव नहीं हो सकता। यह तभी सम्भव होगा, जितना प्रेम मुझे अपने प्रति है उतना ही प्रेम मुझे दूसरे के प्रति भी पैदा होता है। यह तभी हो सकता है जब मैं सब लोगों के भीतर एक ही परमात्मा के निवास का अनुभव कर लूं। इसके पूर्व यह असम्भव है।

क्राइस्ट के जीवन में एक उल्लेख है। वे एक गांव के बाहर ठहरे हुए थे। कुछ लोग एक स्त्री को लेकर उनके पास गये। उन लोगों ने कहा; इस स्त्री ने व्यभिचार किया है। हम इसको क्या सजा दें ? पुराने धर्म की किताब में लिखा है कि इसे पत्थर मारो,

और मार डालो। उन्होंने क्राइस्ट से इसलिये यह पूछा कि इससे दो बातें साफ हो जायेंगी–एक तो यह बात साफ हो जायेंगी, अगर क्राइस्ट यह कहेंगे कि इसे पत्थर से मार डालो तो हम कहेंगे, आप तो कहते थे कि जो एक गाल पर चांटा मारे उसके सामने दूसरा कर देना चाहिए। और आप तो कहते थे, जो घृणा करे उसको प्रेम करना चाहिए। और आप तो कहते थे, जो चोट पहुंचाये उसको क्षमा कर देना चाहिए। तो फिर आप यह क्या कह रहे हैं? और अगर क्राइस्ट ने कहा, इसे पत्थर मत मारो। यह बुरा है, तो हम कहेंगे, यह तो धर्म ग्रन्थों के विरोध में आप कह रहे हैं। आप तो धर्म शास्त्र के विरोध में हैं। इस वजह से वे एक स्त्री को लेकर क्राइस्ट के पास गये। और उन्होंने क्राइस्ट से कहा कि हम इस स्त्री के साथ क्या करें? इसने व्यभिचार किया है। क्राइस्ट ने कहा, जो पुरानी किताब में लिखा है, वही करो। सारे लोग पत्थर उठा लो और इसे मार डालो। वह स्त्री तो बहुत घबड़ा गयी। उसने सोचा था कि क्राइस्ट के पास जाने से शायद जीवन बच जाय, क्योंकि वे शायद इस बात के लिए कहें कि इसे न मारा जाय। लेकिन जब उन्होंने कहा, सारे लोग पत्थर उठा लो और इसे समाप्त कर दो तो वह स्त्री घबड़ा गयी। सारे लोगों ने पत्थर उठा लिये और वे सारे मारने को थे तब क्राइस्ट ने कहा, एक क्षण ठहरो। वह आदमी सबसे पहले पत्थर मारे जिसने कभी व्यभिचार न किया हो। या व्यभिचार का विचार न किया हो। उस पूरी भीड़ में एक भी ऐसा आदमी नहीं था जिसने व्यभिचार न किया हो या व्यभिचार का विचार न किया हो। क्राइस्ट ने कहा, वह आदमी पत्थर मारने का हकदार नहीं होगा। वे पत्थर नीचे गिर गये, और

वे लोग वापस लौट गये। और उन्होंने उस स्त्री से कहा; कोई व्यक्ति इस जगत में किसी दूसरे का निर्णायक नहीं हो सकता। अद्भुत उन्होंने उस स्त्री से बात कही, इस जगत में कोई व्यक्ति किसी दूसरे का निर्णायक नहीं हो सकता।

ना समझ जो हैं वे इस जगत में दूसरे का विचार करते रहते हैं–और निर्णय करते रहते हैं। जो समझदार हैं वे अपना विचार करते हैं और अपना निर्णय करते हैं। वे अपने सम्बन्ध में सोचते हैं; मैं कहां हूं और क्या हूं? वे इस सम्बन्ध में विचार करते हैं कि मेरी जीवन स्थिति कैसी है, और क्या है? और वे इस सम्बन्ध में विचार कर सकते हैं कि मैं क्या उस सारी संभावनाओं को अपने भीतर विकसित कर सका हूं जिसके कि बीज मेरे भीतर थे। या कि मैंने जीवन को व्यर्थ खो दिया है। जो जानते हैं वे थोड़ा विचार करते हैं। थोड़ा विवेक है वे अपना निर्णय और विचार करते हैं। वे अपनी जीवन दिशा पर चिन्तन करते हैं। और जो अज्ञानी हैं। जो नहीं जानते, वे दूसरों की जीवन दशाओं पर चिन्तन और विचार करते हैं।

पहली बात, जिस व्यक्ति को जीवन परिवर्तन करना हो उसके लिए पहला सूत्र है, उसे दूसरों का 'निर्णय' और 'विचार' छोड़ देना चाहिए। इस जगत में कोई भी विचारणीय नहीं है सिवाय आपके। आप अकेले विचारणीय हैं अपने लिए ही विचारणीय हैं और इस जगत में कोई भी विचारणीय नहीं है। और अगर कोई अपने पर विचार करना शुरू करेगा तो उसे दिखायी पड़ेगा कि जिन बुराइयों से उसने दूसरों की निन्दा की है वह बहुत बड़ी मात्रा में उसमें मौजूद है। और जिन भलाइयों की उसने दूसरों में

आकांक्षा की उनका उसके भीतर कोई पता नहीं है। उसे दिखायी पड़ेगा कि जिन भलाइयों की उसने दूसरे में अपेक्षा की है, उनका भीतर कोई प्रमाण नहीं है। होने का और जिन बुराइयों की उसने सदा दूसरों में निन्दा की है, उनकी भीड़ की भीड़ उसके भीतर मौजूद है।

जब ऐसा दिखाई पड़ता है तो घबड़ाहट पैदा होती है। तब संताप पैदा होता है, तब वह बेचैनी पैदा होती है जो मनुष्य को धार्मिक बनाने में धक्का देती है। उसके पहले कोई आदमी धार्मिक नहीं बनता। इसे स्मरण रखें। वही व्यक्ति केवल धार्मिक बन सकता है जिसे यह बेचैनी पैदा हो गयी हो कि सारी दुनिया की बुराइयां उसके भीतर हैं, और भलाइयों का कोई पता नहीं है। तब घबड़ाहट होना बहुत स्वाभाविक होगा। और इसी घबड़ाहट से बचने के लिए सारे लोगों ने यह तरकीब ईजाद की है, कि वे अपनी भलाइयां देखते हैं, और दूसरों की बुराइयां देखते रहते हैं।

जो लोग धार्मिक नहीं होना चाहते। जो जीवन में कोई क्रांति और परिवर्तन नहीं करना चाहते, उनके लिए एक ही तरकीब और रास्ता है किवह दूसरों की बुराइयों का विचार करते रहें। इस भांति अपनी बुराइयां दीखनी बन्द हो जाती हैं। उनका विस्मरण हो जाता है। हमारा चिन्तन दूसरों की बुराइयों में लग जाता है। खुद की बुराइयां उपेक्षित और दबी हुई रह जाती हैं। यही भूल है। अगर मैं कहूं, यही एक मात्र भूल है जो मनुष्य अपने साथ कर सकता है। पहली बात स्मरणीय है कि हम अपना निर्णय, अपना विचार, अपने सम्बन्ध में चिन्तन को जन्म दें कि हम कहां खड़े हैं? किस स्थिति में और किस दशा में खड़े हैं? और जब हम इस दशा

को देखेंगे तो हमें कुछ बातें दिखेंगी। सबसे पहली बात है, यह दिखायी पड़ेगी कि हमारे पल्ले में, हमारे साथ भलाई के नाम पर कुछ भी नहीं है फूलों के नाम पर हमारे पास कुछ भी नहीं है। सिवाय कंकड़ के और कोई व्यक्ति कंकड़ के साथ रहकर आनन्द को कैसे उपलब्ध हो सकता है? कोई व्यक्ति सारी बुराइयों को अपने भीतर रखकर शांति को, और संगीत को कैसे उपलब्ध हो सकता है? स्वाभाविक होगा कि उसका जीवन नष्ट होता चला जायगा। उसका जीवन दुःख से दुःख में गिरता चला जायगा। और उसका जीवन अन्धकार से और अन्धकार में विलीन होता चला जायेगा। और एक दिन वह पायेगा कि वह सारा अवसर, जिसमें कि प्रकाश मिल सकता था, खो दिया है। जिसमें कि आलोक मिल सकता था खो दिया है। जिसमें कुछ होने की सम्भावना थी, वह मौका उसके हाथ से निकल गया है। जिसके बीज बोये जा सकते थे और फसल काटी जा सकती थी वह मौका उसके हाथ से निकल गया है। और तब बहुत गहन पश्चाताप मनुष्य को घेर लेता है। मृत्यु के समय जो दुःख होता है, वह मृत्यु का नहीं होता है, क्योंकि मरने के पहले मृत्यु का कैसे पता चलेगा? मृत्यु के समय जो पीड़ा पकड़ती है, वह पीड़ा पकड़ती है जीवन के उस अवसर के खो जाने की, जिसमें हम कुछ भी न कर पाये। जिसमें हम किसी सम्पत्ति को पैदा नहीं कर पाये।

इसलिए जिन लोगों को कुछ सम्पत्ति मिल जाती है वे मरते समय दुःखी नहीं देखे जाते। केवल थोड़े से लोग मरते समय इस जमीन पर आनन्द से भरे होते हैं जिन्होंने कुछ सम्पत्ति कमाई होती है। जिन्होंने भीतर का कुछ संगीत पैदा किया होता है। जिन्होंने

आलोक में कोई दर्शन किये होते हैं। एक बहुत प्राचीन फकीर ने कहा है कि मृत्यु के समय पता चल जाता है कि जीवन कैसा था? मृत्यु उघाड़ देती है कि जीवन कैसा था? जिसकी मृत्यु आनन्द से भरी हो, जानना चाहिए, जीवन सार्थक हुआ, जिसकी मृत्यु दुःख से भरी हो जानना चाहिये जीवन व्यर्थ गया। यह तो अभी-अभी भी पहचान सकते हैं। अगर इसी क्षण आपकी मृत्यु हो तो क्या होगा? अगर आप यह विचार करें, इसी क्षण मृत्यु हो जाय तो क्या होगा? क्या उस समय आपके हाथ में कुछ होगा? क्या आपकी कोई सम्पदा होगी? कोई उपलब्धि होगी। कुछ होगा जो आपको लगेगा कि मेरे साथ है। मैंने कमाया है। अगर नहीं कुछ होगा तो बहुत दुःख घेर लेगा। मृत्यु का दुःख नहीं है वह, वह आंतरिक दरिद्रता का दुःख है। और जो मानसिक रूप से समृद्ध होते हैं उन्हें दुःख नहीं घेरता।

नानक एक गांव में एक दफा मेहमान हुए थे। वे यात्रा में थे और एक गांव में ठहरे। एक बहुत बड़े धनपति ने आकर उनको कहा कि मेरे पास बहुत सम्पत्ति है। मेरे मरने का समय करीब आ गया है। इस सारी सम्पत्ति को मैं धर्म में लगा देना चाहता हूं। नानक ने नीचे से ऊपर तक उस व्यक्ति को देखा और कहा, तुम तो बहुत दरिद्र मालूम होते हो। तुम्हारे पास कोई सम्पत्ति नहीं दिखायी पड़ती है। वह आदमी बोला, मैं सीधे-सादे लिबास में हूं, इसलिए आप समझे नहीं। मेरे पास बहुत है। नानक ने कहा, मुझे तो कुछ भी नहीं दिखायी पड़ता। मेरे पास हजारों लोग आते हैं, मैं उनकी आंखों में देखकर समझ जाता हूं कि उनके पास कुछ है या नहीं। तुम्हारे पास तो कुछ भी दिखायी नहीं पड़ता। वह बोला,

आप मुझे आज्ञा दें तो पता चलेगा कि मेरे पास कुछ है या नहीं है। कोई काम मुझे बतायें जिसमें मैं अपनी संपत्ति को लगा दूं। नानक ने एक छोटी-सी सुई उसे दी और कहा, इसे मरने के बाद मुझे वापस लौटा देना! यह बिल्कुल पागलपन की बात हो गयी। अगर मैं आपको एक सुई दे दूं--छोटी से छोटी चीज है। इस जगत में उससे छोटा और क्या होगा? वह आपको दे दूं और कहूं कि मरने के बाद मुझे वापस लौटा देना। तो सुई तो बहुत छोटी है। काम बहुत बड़ा हो गया। वह आदमी वहां तो कुछ भी न कह सका, क्योंकि कोई काम रहा था लेकिन वह रास्ते भर सोचते लौटा कि नानक या तो पागल है या इसने खूब मज़ाक किया। रात भर उसने सोचा कि सुई को मरने के बाद कैसे ले जायेंगे? लेकिन कोई उपाय उसे समझ में नहीं आया। उसने बहुत तरह से मुट्ठी बांधने का विचार किया लेकिन सब तरह से बांधने में मुट्ठियां मृत्यु के 'इसी पार' रह जाती हैं। 'उस पार' कोई मुट्ठी नहीं जाती। उसने सब तरह के उपाय सोचे लेकिन कोई उपाय कारगर नहीं होता था। तो सुबह चार बजे लौटा, नानक के पैरों पर गिर पड़ा, और कहा कि यह सुई वापस ले लें। कहीं उधारी मेरे ऊपर न रह जाय। इसे मैं मृत्यु के बाद वापस नहीं लौटा सकूंगा। नानक ने कहा, तुम्हारी सम्पत्ति का क्या हुआ? साथ नहीं पड़ती? तुम्हारी शक्ति का क्या हुआ, साथ नहीं देती? वह व्यक्ति बोला, इस सुई को मृत्यु के पार ले जाने में मेरी सम्पत्ति सहयोगी नहीं है।

नानक ने उससे कहा, सम्पत्ति केवल वही है जिसे मृत्यु न छीन पाती हो। और जिसे मृत्यु छीन लेती हो, उसे नासमझ सम्पत्ति समझते हैं। समझदार उसे विपत्ति मानते हैं। सम्पत्ति नहीं। और

इसलिए जिन लोगों ने सम्पत्ति को छोड़ दिया उन लोगों ने कोई त्याग नहीं किया। विपत्ति मानकर उससे अलग हो गये। नानक ने कहा, जो मृत्यु के पार साथ न जा सके वह विपत्ति हो सकती है।

दो ही तरह के लोग हैं दुनिया में। कुछ हैं जो विपत्ति को कमाते हैं। कुछ हैं जो संपत्ति को कमाते हैं। विपत्ति को कमाने वाले बहुत लोग हैं। इसलिए दुनिया विपत्ति से विपत्ति में गिरती चली जाती है। सम्पत्ति को कमाने वाले बहुत थोड़े लोग हैं। सम्पत्ति को कमाने वाला बनना चाहिए। और सम्पत्ति का यह मतलब हुआ कि जो मृत्यु के पार साथ जा सके। क्या साथ जा सकता है? निश्चित ही बाहर की कोई उपलब्धि साथ नहीं जा सकती। निश्चित ही शरीर के माध्यम से जो भी पैदा हुआ, होगा, वह साथ नहीं जा सकता। निश्चित ही इन्द्रियों के द्वारा जो जाना और पाया गया हो वह साथ नहीं जा सकता। इनके पीछे अगर कोई घटना घटती हो तो वह साथ जा सकती है। उस घटना के घटने में ही सारे जीवन की परिवर्तन और शान्ति के मूल आधार और जड़ें होती हैं। उसके लिए जरूरी है कि हम अपने सारे इन्द्रियों के द्वार बन्द करके भीतर देखें। उसके लिए यह जरूरी है कि हम सारे शरीर से पीछे हटना सीखें। उसके लिए जरूरी है, हम उसको पहचानना सीखें, जो आंखों से देखता है, कानों से सुनता है। हम कान और आंख पर रुक जाते हैं तो बड़े नासमझ हैं। अगर मैं आपकी आंख पर लगे चश्मे को आपकी आंख समझ लूं तो मुझे लोग पागल कहेंगे। क्योंकि चश्मा आंख नहीं है। आंख चश्मे के पीछे है। लेकिन अगर आंख को ही हम देखने वाला समझ लें तो और ज्यादा गलती हो जायेगी, क्योंकि देखने वाली आंख नहीं है। देखने वाला आंख से

भी पीछे है। ऐसे अपने भीतर जो निरन्तर प्रवेश करने की कोशिश करता है--उसको कहता हूं जो सबके पीछे मेरे भीतर खड़ा है, वह उस सम्पदा को उपलब्ध हो सकता है। और जो आंखों के और इंद्रियों के बाहर के जगत में खोजता है वह पूर्ण विपत्ति को उपलब्ध होता है।

धर्म का मूल जन्म मनुष्य को उस क्षण में अनुभव होता है, जब वह अपनी सारी इन्दियों को बन्द करके, सारे शरीर को दूर छोड़ कर भीतर प्रवेश करता है। इसका रास्ता है कि हम अपनी इंद्रियों के भीतर प्रवेश कर सकें। और जो लोग परमात्मा को जाने हैं, उन्होंने किसी मन्दिर में जाकर परमात्मा को नहीं जाना है। उन्होंने अपने भीतर जाकर परमात्मा को जाना है।

जो व्यक्ति अपने भीतर जानना सीख जाता है उसे सब घर 'मन्दिर' हो जाते हैं। और जो व्यक्ति अपने भीतर प्रवेश करना नहीं जानता उसे कोई मन्दिर 'मन्दिर' नहीं हैं। सब मन्दिर नाकाम हैं। क्योंकि जो अपने भीतर नहीं जा सकता वह मन्दिर में कैसे जा सकेगा? जो अपने भीतर की सत्ता को नहीं जानता, वह जगत सत्ता को नहीं जानता है। वह कुछ भी नहीं जान सकता है, जो स्वयं को नहीं जानता है।

मनुष्य के सामने सबसे बड़ी साधना और सबसे बड़ा लक्ष्य और जीवन के सामने सबसे परम दृष्टि एक ही है, कि किसी भी भांति वह अपने भीतर प्रवेश कर जाय। स्वयं को जान ले। अपने भीतर प्रवेश करने के लिए दो मार्ग हैं। एक तो जरूरी है अपने भीतर प्रवेश करने के लिए कि हम सारी इन्द्रियों को बन्द करना सीख जायं। हम कहेंगे, हम इन्द्रियों को बन्द करना जानते हैं। रात आंख

बन्द कर लेते हैं तो आंख बन्द हो जाती हैं। आंख तो बन्द हो जाती हैं लेकिन स्वप्न चलते रहते हैं और जो स्वप्न चलते रहते हैं वह आंख से उत्पन्न हुए सन्देह मन के हैं, इसलिए आंख ठीक से बन्द नहीं हुई।

एक व्यक्ति ने निश्चित किया कि वह साधु हो जाय। वह गुरु की तलाश में गया और एक आश्रम में पहुंचा, जहां कि उसने सुना कि एक अद्‌भुत साधु रहता है। उसने निश्चित किया कि दीक्षित हो जायं। उसके मित्र उसे वहां तक छोड़ने गये। उसके प्रेमी उसे वहां तक छोड़ने गये। उसने आश्रम के द्वार पर उनसे कहा। अब आप मुझे विदा कर दें। अब मैं अकेला जाऊं। आप कब तक मेरे साथ जायेंगे और मुझे एक ऐसा रास्ता चलना है जिस पर कोई मेरे साथ नहीं हो सकता। वह अकेला भीतर गया। उसने साधु को प्रणाम किया। वहां कोई भी नहीं था। उस तख्त में वह अकेला था, और वह साधु था। उस साधु ने उस युवक को कहा, किसलिए आये हो? उस युवक ने कहा कि साधु होना चाहता हूं। साधारण रहना चाहता हूं। वह गुरु बोला, लेकिन अकेले होकर जाओ। तुम तो गृहस्थ लोगों को साथ लेकर आ गये हो। वह आदमी बोला, यह क्या बात आप कर रहे हैं? मैं बिल्कुल अकेला हूं। यहां तो आसपास कोई नहीं दिखायी पड़ता। उस साधु ने कहा, आसपास नहीं, भीतर देखो। जिन लोगों को तुम आश्रम के द्वार पर छोड़ आये हो वे सब वहां मौजूद हैं। वे सारी तस्वीरें वे सारे चेहरे, उन्होंने जो शब्द कहे, वे उनकी आंखों में आंसू आ गये वे, वे सब वहां भीतर मौजूद हैं। उस युवक ने आंखें बन्द कीं। सच में ही वह आश्रम के बाहर खड़ा हुआ था। युवक ने आंख बन्द कीं तो देखा

कि वह आश्रम के बाहर खड़ा है। मित्रों को विदा दे रहा है। आश्रम के भीतर नहीं है। उस साधु ने कहा, इन सबको बाहर छोड़कर आओ।

इन्द्रियों को बन्द करने का अर्थ है, इन्द्रियों को जो भी उपलब्ध होता है उसे क्षीण करना उसे विलीन करना, उसे क्षीण कर देना। अगर निरन्तर इस बात का स्मरण रहे। अगर आंख बन्द करके हम इस बात का स्मरण रखें कि हम सपना नहीं देखेंगे। आंख बन्द करके अगर इस बात का स्मरण रहे कि जिन चेहरों पर आंख बन्द करनी हो उनको भीतर नहीं देखेंगे। अगर इस बात का स्मरण रहे कि आंख का कोई उपयोग आंख बन्द करने के बाद हम भीतर नहीं करेंगे। और अगर कोई उपयोग होने लगे तो हम सजग हो जायें। और जानें कि उपयोग शुरू हो गया। जैसे ही सजग होंगे हमें पता चलेगा कि उपयोग शुरू हो गया। सपना टूट जायेगा और बन्द हो जायेगा।

सपने को देखने के लिए जरूरी है कि हम बिल्कुल भूले हुए हों। हम मूर्च्छित हों। हमें होश न हो। अगर हमें होश आ जाय तो भीतर का कोई भी सपना तत्क्षण टूट जायेगा। अगर कोई व्यक्ति अपने भीतर निरन्तर धीरे-धीरे होश को और चेतना को साधने लगे। अगर वह इस बात को साधने लगे कि वह देखता रहे भीतर स्मरण-पूर्वक कि इंद्रियों के द्वारा पैदा हुए यह संस्कार, इंद्रियों के द्वारा पैदा की हुई बातें, उसके भीतर तो नहीं चलती हैं। तो वह धीरे-धीरे क्रमशः साधने में, उनको क्षीण करने में समर्थ हो जाता है। एक दिन आता है, इंद्रियों के सारे संवेदन शून्य हो जाते हैं। एक दिन आता है, भीतर वह परिपूर्ण शान्ति को उपलब्ध हो जाता है। जब

वह भीतर परिपूर्ण शान्त होता हैं। जब भीतर कोई हलचल, कोई आन्दोलन नहीं रह जाते। जब भीतर कोई तरंग नहीं रह जाती। उस शान्ति में, उस परम निर्जन शान्ति में उस निस्तब्धता में उसको पता चलता है, वह कौन है ? उसे दिखायी पड़ता है 'अपना होना', 'अपनी सत्ता', अपनी आत्मा का अनुभव उसको शुरू होता है। और आत्मा की एक किरण मिल जाय तो सारे जीवन से दुराई गिर जाती है।

आत्मा का जरा सा अनुभव मिल जाय तो जीवन का सद्-असद् आचरण गिर जाता है। आत्मा की जरा सी खबर मिल जाय तो सारा आचरण तत्क्षण परिवर्तित हो जाता है। जैसे ही व्यक्ति भीतर के उस तत्व को जान ले, बाहर उसके जीवन में सब सुन्दर, सब शुभ हो जाता है। जो जीवन की कला को जानते हैं वे इस सत्य को जानने की चेष्टा करते हैं। जो जीवन की कला को नहीं जानते वे बाहर से फूल चिपकाने की कोशिश करते हैं।

दो ही रास्ते हैं फूल लगाने के—एक तो कागज के फूल हैं जिनको हम ऊपर से लगा लें और एक असली फूल हैं जो पौधों के प्राणों में भीतर से आते हैं। जो लोग अच्छी-अच्छी बातें ऊपर से सीख लेते हैं और अच्छे-अच्छे काम ऊपर से करने लगते हैं उनका जीवन कागज के फूलों का जीवन हो जाता है। उनमें कोई जान नहीं होती। उन फूलों में कोई सुगन्ध भी नहीं होती और वे फूल ऊपर होते हैं, नीचे दुर्गन्ध होती है।

मैं यह नहीं कहता, कोई व्यक्ति कागज के फूल इस तरह अपने जीवन में लगाये। मैं यह नहीं कहता हूं, अपनी बागवानी में, कोई इतनी जल्दी नहीं होगा, फूल जरा मुश्किल से आते हैं। बीज बोने

पड़ते हैं। वर्षों प्रतीक्षा करनी होती है। वर्षों उन पर पानी डालना होता है। धूप की व्यवस्था करनी होनी है। बाढ़ लगानी होती है कि कोई उनको नष्ट न कर दे। और तब बड़ी मुश्किल और बड़ी प्रतीक्षा से अंकुर आते हैं। पौधे बड़े होते हैं। उनमें कलियां लगती हैं। और तब कहीं फूल बनते हैं। ये जड़ों से आए हुए फूल होते हैं।

जो व्यक्ति अपनी इन्द्रियों को पीछे छोड़कर भीतर प्रवेश करने की चेष्टा करता है वह एक तरह की बागवानी कर रहा है असली फूल लाने की। जब उसे भीतर की किरण मिलेगी। जब उसे अन्तस का दर्शन होगा। आलोक का स्रोत उपलब्ध होगा, तब बीज फूटेगा और अंकुर निकलेंगे। इससे बाहर के जीवन में असली फूल आने शुरू हो जायेंगे। असली फूल आ जायं तो जीवन आनंद हो जाता है। और वैसा आनन्द पाये बिना जो व्यक्ति इस जगत को छोड़ देता है उसके दुर्भाग्य का अन्त नहीं है। वे लोग बहुत अभागे हैं। बहुत दुर्भाग्य से भरे हुए हैं जिन्होंने यह जगत असली फूलों को पाये बिना छोड़ दिया। वे खुद भी कोई सुगन्ध और सुवास नहीं जान सके और उनके द्वारा दूसरों को दी गयी सुवास और सुगन्ध नहीं मिल सकी। जिस व्यक्ति को अपने मनुष्यत्व की थोड़ी गरिमा है। जिस व्यक्ति को अपने भीतर की मनुष्यता का थोड़ा सा गौरव है, उसे यह संकल्प कर ही लेना चाहिए की मृत्यु के पहले असली फूलों की सुगन्ध उपलब्ध कर लेनी आवश्यक है।

अन्त में मेरी बातों को इतने प्रेम और शान्ति से सुना, उसके लिए अत्यन्त अनुग्रहीत हूं। आप सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं, मेरा प्रणाम स्वीकार करें।

० ० ०

६. आनन्द की कला

मेरे प्रिय आत्मन,

एक नया मन्दिर निर्मित हो रहा था। सैकड़ों मजदूर उसे बनाने में लगे थे। नये पत्थर तोड़े जा रहे थे, नयी मूर्तियां बनायी रही थीं। एक कवि भी भूला भटका हुआ उस मन्दिर के पास से गुजर गया। उसने एक पत्थर तोड़ते मजदूर से पूछा कि मेरे मित्र, क्या कर रहे हो? उस मजदूर ने क्रोध से भरी आंखें उधर उठायीं। उसकी आंखों में जैसे आग जलती हो। और उतने ही क्रोध से उसने कहा, क्या तुम अन्धे हो, तुम्हें दिखायी नहीं पड़ता कि मैं क्या कर रहा हूं? मैं पत्थर तोड़ रहा हूं। और वापिस उसने पत्थर तोड़ना शुरू कर दिया। वह जैसे पत्थर न तोड़ता हो, पूरे जीवन से बदला ले रहा हो। वह जैसे पत्थर न तोड़ता हो, किसी प्रतिशोध में हो।

वह कवि आगे बढ़ गया और थोड़ी दूर पर दूसरे मजदूर से उसने

पूछा। वह मजदूर भी पत्थर तोड़ रहा था। उसने उससे पूछा कि मेरे मित्र, क्या कर रहे हो? उस मजदूर ने अपनी उदास आखें ऊपर उठायीं। उस कवि को देखा और फिर कहा, बच्चों के लिए रोजी-रोटी कमा रहा हूं। और उतनी ही उदासी से उसने फिर पत्थर तोड़ना शुरू कर दिया। जैसे जिन्दगी में उसके कोई रस न हो, कोई आनन्द न हो, कोई गीत न हो, जिन्दगी में उसके कोई सौंदर्य न हो, कोई संगीत न हो, कोई सुख न हो। जीवन जैसे एक बोझ हो, जिसे ढोना है, ढोये चले जाना है। और समाप्त हो जाना है। उसका पत्थर तोड़ना ऐसा था, जैसे एक बोझ को कोई खींचता हो असमर्थता में, बेबसी में, मजबूरी में। जिस बोझ से बचने का कोई उपाय न हो, ऐसे वह पत्थर तोड़ रहा था।

वह कवि आगे बढ़ गया और उसने तीसरे मजदूर से पूछा। वह मजदूर भी पत्थर तोड़ रहा है। लेकिन वह पत्थर भी तोड़ रहा है और गीत भी गा रहा है! उसकी आंखों में जैसे एक चमक है, एक खुशी है। उसके प्राणों में जैसे कोई सुगन्ध है। वह जैसे किसी लोक में नृत्य कर रहा है। उस कवि ने उससे भी पूछा कि मेरे मित्र, क्या कर रहे हो? उसने हंसती हुई आंखें ऊपर उठायीं और जैसे उसके शब्दों से फूल झर गये हों——उसने कहा, भगवान का मंदिर बना रहा हूं।

वे तीन मजदूर——तीनों ही पत्थर तोड़ते थे। वे तीनों ही एक ही काम करते थे लेकिन उनके काम को देखने की दृष्टि भिन्न थी। एक क्रोध, दुख और पीड़ा में; एक उदासी में, बोझ में, अर्थहीनता में; एक आनन्द में, किसी मग्नता में, किसी समर्पण में! एक पत्थर तोड़ रहा था, एक रोजी-रोटी कमा रहा था, एक प्रभु का मन्दिर

बना रहा था! पत्थर तोड़ना आनन्द का काम कैसे हो सकता है? और रोजी-रोटी कमाने में नृत्य कहां से आयेगा, संगीत कहां से आयेगा? लेकिन प्रभु का मंदिर बनाना निश्चित ही आनन्द हो सकता है।

इस कहानी से इसलिए शुरू करना चाहता हूं कि जीवन के मंदिर में भी तीन तरह के लोग ही होते हैं। जीवन के मंदिर को बनाने में भी तीन तरह के मजदूर होते हैं।

हम किस भांति के मजदूर हैं?

हम पत्थर तोड़ रहे हैं, रोजी-रोटी कमा रहे हैं या प्रभु का मंदिर बना रहे हैं?

और स्मरण रहे, हम जीवन को जिस भांति देखना शुरू करते हैं, जीवन वैसा ही हो जाता है। जीवन अपने आप में बिल्कुल कोरी स्लेट है। हमारी दृष्टि उस पर जो कुछ लिखना शुरू करती है, वही लिख जाता है। जीवन कोरा कागज है। हमारे प्राण उस पर थिरकते हैं और कुछ लिख जाते हैं। वही हमारी कथा हो जाती है, वही हमारा जीवन हो जाता है।

जीवन लेकर हम पैदा नहीं होते, जीवन को हम रोज निर्मित करते हैं।

जीवन जन्म के साथ नहीं मिलता, मृत्यु के साथ उपलब्ध होता है।

जीवन एक लम्बी यात्रा है और इस लम्बी यात्रा में रोज हम जैसा देखते हैं और जैसा निर्मित करते हैं, वैसा ही निर्मित होता चला जाता है।

सारी दुनिया लेकिन दुख से भरी है! और आदमी के प्राण

अंधेरे से भरे हैं। सब अर्थहीन, मीनिंगलेस मालूम होता है। सारे जगत में आदमी के प्राणों से गीत खो गये हैं, अर्थ खो गया है। आनन्द खो गया है, जीवन की पुलक खो गयी है। क्यों खो गयी है, क्या हो गया है?

एक बात हो गयी है दुर्भाग्यपूर्ण। हजारों साल की शिक्षा ने मनुष्य को दुःखी होना सिखा दिया है। मनुष्य की दृष्टि को दुःख से भर दिया है। आज तक पृथ्वी पर जीवन के आनन्द को स्वीकार करने वाली शिक्षा पैदा नहीं हो सकी। जीवन का विरोध करने वाली, जीवन का निषेध करने वाली, जीवन की निन्दा करने वाली जीवन को दुःखपूर्ण सिद्ध करने वाली, जीवन छोड़ देने योग्य है—यह समझाने वाली, जीवन के बाहर कहीं कोई मोक्ष है—वहां चले जाना है, जीवन से मुक्त हो जाना है—ऐसा सिखाने वाली, शिक्षा तो पृथ्वी पर रही है। लेकिन पृथ्वी के जीवन को ही मोक्ष बना लेना; जो उपलब्ध है, उसे ही आनन्द में परिवर्तित कर लेना, ऐसा विज्ञान, ऐसी शिक्षा उत्पन्न नहीं हो सकी। इसलिए मनुष्य की यह दुर्दशा हो गयी। इस दुर्दशा में अतीत में दी गयी दुःखपूर्ण शिक्षा का हाथ है। हजारों साल से एक ही बात आदमी के मन पर ठोंकी जा रही है कि जीवन व्यर्थ है, असार है, माया है, बुरा है, छोड़ देने योग्य है, जीवन पाप है! केवल वे ही लोग पैदा होते हैं, जिन्होंने पाप किये हैं। जो पाप नहीं करते, वे जन्म नहीं लेते, वे मुक्त हो जाते हैं! पापी पैदा होते हैं! जीवन पापियों की जगह है! और जो पुण्यात्मा हैं, वे मोक्ष चले जाते हैं, वे जीवन में वापस नहीं लौटते हैं! यही सिखाया जा रहा है कि आवागमन से मुक्त हो जाओ, जीवन से छूट जाओ! जीवन है जंजीर, जीवन से मुक्त

हो जाओ! यह शिक्षा इतनी विषाक्त, इतनी पायजनस इतनी जहरीली है, जिसका कोई हिसाब नहीं। और अगर इसने पूरी मनुष्यता के प्राणों से सारा आनन्द छीन लिया हो तो कोई आश्चर्य नहीं। यह होने ही वाला था। और एक बड़ा मजा है, आदमी के तर्क हमेशा व्हीशिअस सर्किल का रूप ले लेते हैं, हमेशा दुष्ट-चक्र बन जाते हैं।

जीवन दुःखपूर्ण है, इसलिए नहीं है कि जीवन दुःखपूर्ण है। इसलिए कि हम जीवन को आनन्दपूर्ण बनाने की क्षमता और पात्रता उपलब्ध नहीं कर पाते हैं। जीवन दुःखपूर्ण है, इसलिए नहीं कि जीवन का स्वभाव दुःख है। जीवन दुःखपूर्ण है, क्योंकि हम दुःख भरी आंखों से जीवन को देखने की कोशिश करते हैं। हमारी दृष्टि की दुःखभरी छाया सारे जीवन को अन्धकारपूर्ण कर देती है।

एक अन्धा आदमी खड़ा हो, सूरज निकला हो, रोशनी बरस रही हो। अन्धे आदमी के लिए कोई रोशनी नहीं है। वह कहेगा, घनी अन्धेरी रात है, अमावस मालूम होती है। सूरज का कोई कसूर नहीं, लेकिन अन्धा आदमी है, उसके पास आंख नहीं है। लेकिन अन्धे आदमी को क्षमा किया जा सकता है। उसका कसूर क्या, उसके पास आंख नहीं है। लेकिन जीवन के आनन्द को न देख पाने में हम अन्धे नहीं हैं? आंख वाले लोग आंख बन्द किये हुए खड़े हैं! अन्धे भी होते तो हमें क्षमा किया जा सकता है। आंख है और आंख बन्द किये हुए खड़े हैं! एक दुष्ट-चक्र पैदा हुआ है। जीवन दुःखपूर्ण मालूम होता है, क्योंकि जीवन को आनन्द से कैसे देख पायें, इसकी कला का हमें कोई बोध नहीं है।

एक घर में, मैंने सुना है सैकड़ों वर्षों से एक वीणा रखी हुई थी। वह वीणा घर में एक उपद्रव थी। क्योंकि घर में जब भी कोई गंभीर बात चलती होती, कोई बच्चा उस वीणा को छेड़ देता है और बूढ़े नाराज होते कि यह शोर-गुल क्या मचा रखा है, बन्द करो यह। घर में जब भी कोई मेहमान आता तो वीणा छिपा दी जाती कि कहीं कोई बच्चा उसके तारों को न छेड़ दे! फिर घर के लोग तंग आ गये। कोई पूजा करता होता, बच्चे वीणा छेड़ देते, कोई बच्चा वीणा को गिरा देता, घर झंकार से भर जाता। बड़ा डिस्टरबेंस मालूम होता। रात लोग सोये होते, चूहे दौड़ जाते, बिल्लियां दौड़ जातीं, वीणा गिर जाती, आवाज हो जाती, घर में कोलाहल हो जाता, नींद टूट जाती। फिर आखिर घर के लोगों ने तय किया कि इस वीणा को यहां से हटा देना उचित है। यह बड़े उपद्रव की चीज हो गयी है। और उन्होंने एक दिन घर के बाहर सुबह ही सुबह वीणा को ले जाकर कचरे घर में डाल दिया। वे घर में वापस भी नहीं लौटे थे कि उनके पीछे ही कोई अद्‌भुत स्वरों की लहरी घर के भीतर प्रविष्ट होने लगी! कोई भिखारी रास्ते से गुजरता था, उसने वीणा उठा ली है और बजाने लगा है। वे ठगे रह गये, वे वापस लौट आये घर के लोग और उन्होंने देखा कि उस कूड़े घर के वृक्ष के पास बैठकर कोई भिखारी वीणा बजा रहा है। उनकी आंखों में आंसू आ गये और उन्होंने उस भिखारी से कहा, क्षमा करना, हमें पता नहीं था कि वीणा में इतना संगीत छिपा है। हमारे घर में तो एक उपद्रव का कारण थी, इसलिए हम इसे बाहर फेंक गये। तुमने हमारी आंखें खोल दी हैं। लेकिन उस भिखारी ने कहा, वीणा में कुछ भी नहीं छिपा है, जैसी अंगुलियां

लेकर आदमी वीणा के पास जाता है, वही वीणा से प्रगट होने लगता है।

जीवन की वीणा में भी कुछ नहीं छिपा है, हम जैसी अंगुलिया लेकर, जैसी दृष्टि लेकर जीवन के पास जाते हैं, वही जीवन से प्रकट होने लगता है। हमारी अपात्रता है कि हम आनन्द को जन्म नहीं दे पाते, वीणा से संगीत पैदा नहीं कर पाते। दोष बीणा को देते हैं। इस दोष से कोई वीणा से संगीत पैदा नहीं हो जायेगा। इस दोष से एक बात भर होगी कि जो अंगुलियां कुशल हो सकती थीं, वे कभी कुशल नहीं हो पायेंगी। क्योंकि दोष उस पर थोप दिया गया है, जिसका दोष न था। अंगुलियां थीं गैर-कुशल, अकुशल और वीणा दोषी हो गयीं !

मनुष्य पात्रता पैदा नहीं कर पाया कि जीवन से संगीत उत्पन्न हो जाय। और दोष दे दिया जीवन को, कि जीवन है असार, जीवन है व्यर्थ, जीवन है दु:ख, जीवन है नर्क, जीवन है छोड़ देने योग्य ! और जब जीवन को छोड़ देने योग्य समझ लिया गया, जब वीणा को हम कचरे घर पर फेंक आये, तो अगर वीणा टूट जाय और अगर असार हो जाय, और अगर वीणा के तार बिखर जायं, तो आश्चर्य क्या है ? हजारों साल से जीवन उपेक्षित है। तो जीवन दु:खपूर्ण होता चला गया। और जब जीवन दु:खपूर्ण होता चला गया तो हमारी शिक्षा सही मालूम होने लगी कि ठीक थे वे लोग, जो कहते थे, जीवन गलत है, जीवन बुरा है। ऐसा व्हीशिअस सर्किल पैदा हो गया है। शिक्षा ठीक मालूम होने लगी, क्योंकि लोग ठीक थे !

यह शिक्षा गलत है और यह चक्र भी गलत है।

धर्म असफल होता चला गया, क्योंकि धर्म का एक गलत एसो-

सिएशन हो गया, धर्म का एक गलत सम्बन्ध हो गया। दु:खवादी शिक्षकों से धर्म के सम्बन्ध हो जाने के कारण दुनिया अधार्मिक हो गयी। आनन्द, और आनन्द की स्वीकृति जिनके मन में है, वे ही लोग-सम्यक धर्म को पृथ्वी पर वापस उतार सकते हैं। लेकिन जो लोग दु:खी हैं, पीड़ित हैं, चिन्तित हैं, विक्षिप्त हैं, जिन्हें जीवन से कोई संगीत पैदा करने की क्षमता नहीं, वे सारे लोग क्रोध में, प्रति-शोध में जीवन को गाली देते हैं और जीवन को इन्कार करने लगते हैं।

यह हमारी सहज आदत है। यह हमारी आदत का हिस्सा है कि जब भी हम दोष देते हैं, तो अपने को बचा लेते हैं, दोष हमेशा दूसरे को दे देते हैं। दो आदमी लड़ते हैं और दोनों तय करते हैं कि दूसरा जिम्मेदार है, मैं जिम्मेदार नहीं हूं ! जीवन से निरन्तर हमारा संघर्ष चल रहा है और हमेशा हम जीवन को जिम्मेदार ठहरा देते हैं और अपने को बचा लेते हैं ! लेकिन इससे जीवन का कुछ भी नहीं बिगड़ता, हमारा सब कुछ नष्ट हो जाता है।

जीवन दु:ख नहीं है। हमारे देखने की दृष्टि कहीं भूल भरी है। हम गलत जगह पर खड़े होकर देख रहे हैं। हमारी अपनी देखने की क्षमता भ्रांत है। उस भ्रांत क्षमता के कारण सब भ्रांत दिखायी पड़ता है।

एक संध्या एक राजमहल में उस गांव के कुछ प्रतिष्ठित लोगों को भोजन पर आमंत्रित किया गया। गांव का एक बूढ़ा धनपति, वह भी आमंत्रित था। वह सज-धज कर तैयार हो गया, उसकी बग्घी जुतकर तैयार हो गयी। वह बैठने को था, तभी उसे ख्याल आया कि उसकी नास की डिबिया खाली है। उसने सोने की डिबिया

निकाली और अपने लड़के को कहा कि तू शीघ्र जा, अच्छी से अच्छी नास, स्नफ खरीद ला। इस डिब्बी को भरवा ला। उसने पांच रुपये दिये, वह लड़का भागा बाजार की तरफ, लेकिन रास्ते में एक खिलौनों की दूकान पर एक नयी छोटी खिलौना गाड़ी आयी थी, उसके दाम पांच ही रुपये थे। और उस बच्चे का मन लालच से भर गया। बूढ़ों के मन तक खिलौनों के प्रति लालच से भर जाते हैं, तो बच्चों का क्या ? उस बच्चे का मन लालच से भर गया। वह लोभ से जाकर खड़ा हो गया दुकान पर, उसके पास पांच रुपये थे। उसने पांच रुपये दे दिये और खिलौना गाड़ी खरीदकर वापस लौटने लगा, लेकिन तब उसे ख्याल आया कि घर जाकर तो बहुत मुसीबत हो आयेगी। नास कहां है? डिब्बी खाली है और पिता तैयार खड़े हैं, राजमहल जाने को। क्या करूं, क्या न करूं ? तभी उसे रास्ते के किनारे घोड़े की लीद का ढेर पड़ा हुआ दिखायी पड़ा। थोड़ी-सी लीद उठाकर उस डिब्बी में भर दी। रंग बिल्कुल एक जैसा था और देखने से पहचानना कठिन था कि क्या है। जाकर उसने पिताके हाथ में डिब्बी दे दी। उन्होंने देखी डिब्बी भरी थी खुश हुए। उन्होंने डिब्बी खीसे के भीतर रख ली।

वे राजमहल पहुंच गये। जब भोजन का पहला दौर चला, राजा के पास ही वह धनपति बैठा था, दौर के बाद उसने अपनी सोने की डिबिया निकाली। राजा को कहा, थोड़ी-सी नास लेंगे ? लेकिन राजा ने कहा, अभी नहीं, थोड़ी देर बाद। तब उसने बड़ी चुटकी भरी और खुद नास ली। लेकिन नास लेने के बाद उसने बड़ी सशपीसिअस नजर से चारों तरफ देखा। बड़ा सूंघकर पहचानने की कोशिश की कि मामला क्या है ? फिर उसने राजा से कहा, क्या

आपको घोड़े की लीद की बास तो नहीं आती है कहीं ? हट सीम्स फनी, बड़ा अजीब-सा लगता है, डू यू स्मैल हार्स डंग। राजा ने कहा, नहीं नहीं, यहां राजमहल में घोड़े की लीद की बास कहां। फिर उसने डिब्बी बन्द कर ली। लेकिन वह बार-बार सूंघ कर देखता रहा कि कहीं से घोड़े के लीद की बास चली आती है !

फिर दूसरा भोजन का दौर चला, उसने बाद में फिर डिबिया निकाली। राजा को कहा, अब आप लेंगे ? राजा ने अबकी बार इन्कार करना ठीक न समझा। उसने भी बड़ी चुटकी भरी और जोर से नास ली। नास लेते ही वह भी फिर संदेह भरी नजरों से चारों तरफ झांकने लगा, और उसने कहा, आपकी नास बड़ी अद्भुत मालूम होती है, क्योंकि मुझे भी घोड़े की लीद की सुगन्ध आने लगी। उस भवन में और भी बहुत मेहमान थे। अगर उस नास को वे सभी सूंघ लेते, तो उन सभी को उस भवन में घोड़े के लीद की सुगन्ध---दुर्गन्ध आने लगती। लेकिन वह कसूर उस भवन का न था। वह नास न थी, घोड़े की लीद ही थी।

इस सारे जीवन में चारों तरफ दुःख दिखायी पड़ रहा है। यह जीवन की दुर्गन्ध नहीं है। यह हमने कोई दुःख भरी शिक्षा की नास अपनी नाक में भर रखी है। चारों तरफ हमें दुर्गन्ध मालूम पड़ रही है, चारों तरफ दुःख मालूम पड़ रहा है। फिर जिसको दुःख मालूम नहीं पड़ता है, हम कहते हैं, तुम अभी नासमझ हो। जरा थोड़े दिन जिंदगी में जियोगे तो पता चल जायेगा। अभी जवान हो, अभी होश नहीं। जब बूढ़े होगे, तब पता चलेगा कि जिन्दगी असार है। बूढ़े होते-होते तक वह भी नास चख लेगा। वह भी उन्हीं शास्त्रों को पढ़ लेगा और उन्हीं शिक्षकों के चरणों में बैठ जायेगा और वह

भी उन मंदिरों और मस्जिदों में हो आयेगा, जहां वह नास दुःख की बिक रही है सारी दुनिया में। बूढ़े होते-होते तक बचना बहुत मुश्किल है। बच्चे बच जाते हैं, थोड़े-बहुत दिन तक जवान बच जाते हैं, लेकिन बूढ़े होते-होते तक बचना मुश्किल है। भोजन के एक दौर पर नास मत सूंघियेगा दूसरे दौर पर मत सूंघियेगा, लेकिन कोई अगर पूछता चला जायगा कि नास लेते हैं, नास लीजियेगा—फिर नास ले ही लेंगे आप और पता चलेगा, अरे, यह सारी जिन्दगी बड़ी दुःखपूर्ण मालूम पड़ रही है।

शिक्षाएं दुःख भरी आदमी की छाती पर भारी पड़ गयी हैं। और तरकीब है, जीवन को दुःख सिद्ध किया जा सकता है। और जीवन को कुछ भी सिद्ध किया जा सकता है, और एक बात स्मरण रखना आप, जो लोग अपने आनन्द में लीन होते हैं, उन्हें उसकी फिक्र ही नहीं होती कि वे किसी के सामने सिद्ध करने जायं कि जीवन आनन्द है। कभी आपको पता चला? जब आप स्वस्थ होते हैं तो आपको पता भी नहीं चलता है कि आप स्वस्थ हैं।

जब आप आनंदित होते हैं, तब आपको पता भी नहीं चलता कि आप आनंदित हैं।

जब आप प्रेम से परिपूर्ण होते हैं तो आपको पता भी नहीं चलता है कि आप प्रेम से भरे हैं।

लेकिन जब आप बीमार होते हैं तो पता चलता है कि मैं बीमार हूं। स्वस्थ होते हैं तो पता नहीं चलता! जो आदमी आनन्द में होता है, उसे पता ही नहीं चलता है कि वह आनन्द में है। उसे यह ख्याल भी नहीं आता कि वह सिद्ध करे कि जीवन

आनन्द है, जीवन आनन्द है, इसे सिद्ध करने की कोई जरूरत नहीं रह जाती।

लेकिन जो लोग दुःख में भरे होते हैं, उनके सामने विकल्प हो जाता है। या तो वे यह मान लें कि वे गलत हैं, इसलिए जीवन दुःखपूर्ण मालूम पड़ रहा है। या तो यह सिद्ध कर दें कि जीवन दुःखपूर्ण है। और तब अपनी आत्मआलोचना से बच जायं। तो दुःखी आदमी सिद्ध करने निकल पड़ता है कि जीवन दुःखपूर्ण है।

आनंदित लोग सिद्ध करने नहीं जाते कि जीवन आनन्दपूर्ण है!

इसलिए आनन्द की शिक्षा विकसित नहीं हो सकी, दुःख की शिक्षा विकसित हो सकी। दुःख की शिक्षा इसलिए विकसित हो सकी कि दुःख के लिए कोई आर्गूमेंट चाहिए, कोई वजह चाहिए। दुःख को बिना वजह कोई भी स्वीकार करने को राजी नहीं है।

आनन्द को तो बिना वजह हम स्वीकार करते हैं। जब आप आनंदित होते हैं, तब आप पूछते हैं किसी से कि आनन्द क्यों है? आनन्द सहज स्वीकृति है, उसके लिए कोई काजलिटी नहीं मांगता जब आप स्वस्थ होते हैं तब आप पूछते हैं किसी से जाकर कि मैं स्वस्थ क्यों हूं? आप स्वास्थ्य को स्वीकार कर लेते हैं। कोई आर्गुमेंट, कोई प्रूफ; कोई प्रमाण किसी शास्त्र की, किसी शिक्षक की, किसी शास्ता की—कोई भी जरूरत नहीं कि जीवन स्वस्थ क्यों है, आनन्द क्यों है? लेकिन जब आप बीमार होते हैं, तो आप पूछते हैं, मैं बीमार क्यों हूं? काजलिटी क्या है, कारण क्या है? जब आदमी दुःखी होता है तो पूछता है कि मैं दुखी क्यों हूं?

दो ही कारण हो सकते हैं या तो मैं गलत आदमी हूं, और या फिर जीवन दुःख है। लेकिन मैं गलत आदमी हूं, यह अहंकार को

स्वीकार नहीं होता। फिर एक ही रास्ता रह जाता है कि जीवन ही ऐसा है कि उसमें दुःख होगा। उसमें मेरा और तेरा सवाल नहीं, जीवन दुःख है। इसलिए जीवन को दुःख सिद्ध करने की चेष्टा चलती है। और जीवन को दुःखी सिद्ध करने के लिए दलीलें खोजी जाती हैं, तरकीबें खोजी जाती हैं, प्रमाण खोजे जाते हैं। यह आश्चर्य-जनक है, लेकिन सत्य है कि जीवन जब भी वैसा होता, जैसा होना चाहिए तो हम उसे जीते हैं। हम सिद्ध करने की चिन्ता में नहीं पड़ते। लेकिन जीवन जब वैसा हो जाता है, जैसा नहीं होना चाहिए तो हम सिद्ध करने की कोशिश करते हैं। फिर जीने का तो कोई उपाय नहीं रह जाता।

आनन्द में जो हैं, वे जीवन को जीते हैं। दुख में जो हैं, वे जीवन दुःख है, ऐसा सिद्ध करते हैं। और एक विकल्प यह था कि वे स्वीकार करते कि मैं कुछ भूल में हूं, मैं कुछ भ्रांत हूं, मेरी कोई गलती है, लेकिन इसे कोई मानने को तैयार नहीं होता है।

एक छोटा-सा गांव––एक सुबह ही सुबह मैं उस गांव के द्वार पर खड़ा हूं। अभी गांव जगने के करीब है। एक बूढ़ा आदमी गांव का, गांव के बाहर बैठा है। एक बैलगाड़ी आकर रुक गई और उस बैलगाड़ी का मालिक पूछता है उस बूढ़े से। मैं इस गांव में निवासी बनना चाहता हूं, क्या बता सकते हैं, इस गांव के लोग कैसे हैं? उस बूढ़े ने नीचे से ऊपर तक उस गाड़ी के सवार को देखा और कहा कि इसके पहले कि मैं कुछ कहूं, मैं जान लेना चाहूंगा कि तुम जिस गांव को छोड़कर आ रहे हो, उस गांव के लोग कैसे थे? क्यों कि बिना उस गांव के बाबत जाने इस गांव के बाबत कुछ भी बताना बहुत मुश्किल है। मैं भी हैरान हो गया हूं, वह गाड़ी का सवार

भी हैरान हो गया है। उस गांव से क्या संबंध इस गांव के लोगों का है! जिस गांव को वह आदमी छोड़कर आ रहा है, उस गांव के बाबत जानने की क्या जरूरत, इस गांव के बाबत में बताने के लिए?

लेकिन वह बूढ़ा बहुत समझदार है। उस आदमी ने यह सुनते ही कि उस गांव की चर्चा की गयी, प्रश्न पूछा गया, वह क्रोध से भर गया! और उस आदमी ने कहा, क्षमा करें उस गांव की याद न दिलायें! मेरा खून खौल जाता है। उस गांव जैसे दुष्ट लोग पृथ्वी पर कहीं भी नहीं हैं। उन दुष्टों के कारण ही तो मैं उस गांव को छोड़कर आ रहा हूं। और कसम खायी है भगवान के मंदिर में––भगवान के मंदिर का उपयोग लोग कसमें खाने के लिए ही करते हैं, और किसी काम के लिए करते भी नहीं––कसम खायी है कि जब तक उस गांव को जलवा न दूंगा, तब तक चैन से नहीं रहूंगा। उस बूढ़े आदमी ने कहा, मेरे मित्र, गाड़ी पर सवार हो जाओ। मैं सत्तर साल से इस गांव को जानता हूं। इस गांव के लोग उस गांव से भी बदतर हैं। इस गांव में ठहरने की कोई भी जरूरत नहीं। तुम कोई और गांव खोज लो। उसने गाड़ी आगे बढ़ा ली है। वह बूढ़ा हंसने लगा है और मुझसे कहने लगा, इस बेचारे को कोई भी गांव नहीं मिल सकता है जो अच्छा हो।

और यह बात ही होती है कि एक घुड़सवार आकर रुक गया और वह पूछने लगा, मैं इस गांव में निवासी बनना चाहता हूं। इस गांव के लोग कैसे हैं? उस बूढ़े ने फिर वही पूछा। "उस गांव के लोग कैसे थे, जहां से तुम आते हो?" वह आदमी खुशी से भर गया। कोई धन्यवाद, कोई अनुग्रह उसकी आंखों में झलक आया।

कोई स्मृति की सुगन्ध उसके चारों तरफ गूंज उठी। और उसकी आंखों में आंसू भर आये और वह कहने लगा, उस गांव के लोगों की याद भी मेरे प्राणों को एक आतुर प्यास से भर देती है। उनको छोड़ना पड़ा, यह बिछोह भारी है। उस गांव जैसे प्यारे लोग कहां मिल सकेंगे? लेकिन अभागा था मैं, परिस्थितियां थीं कि मुझे गांव के बाहर रोटी-रोजी कमाने को निकलना पड़ा। लेकिन सपना यही रहेगा मन में कि जब भी मौका मिले, वापस वहीं पहुंच जाऊं। मेरी कब्र वहीं बने, उसी गांव में। उस गांव जैसे प्यारे लोग कहीं भी नहीं हैं। क्या मैं इस गांव में रुक सकता हूं?

उस बूढ़े ने उसे उठकर गले से लगा लिया और कहा, मैं सत्तर साल से इस गांव में हूं, तुम आओ। मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूं कि इस गांव के लोग, उस गांव के लोगों से भी अच्छे हैं। तब मुझे दिखायी पड़ा कि वह बूढ़ा क्या कह रहा था? उस बूढ़े ने तो जीवन के दर्शन की सारी बात कह दी।

जीवन वैसा हो जाता है, जैसे हम हैं, गांव वैसा हो जाता है, जैसा मैं हूं। सारी पृथ्वी वैसी हो जाती है, जैसा मैं हूं। मैं ही विस्तृत होकर सारे जीवन का अनुभव बन जाता हूं।

लेकिन नहीं, मैं तो बिल्कुल ठीक हूं, जीवन दुःख है, जीवन पाप है, जीवन असार है, जीवन माया है, जीवन निरर्थक है——इस दृष्टि को, इस फिलासफी को लेकर कोई भी व्यक्ति कभी प्रभु के द्वार में कैसे प्रवेश कर सकेगा? यह आदमी अगर परमात्मा के दरवाजे पर भी पहुंच जाय, तो पायेगा कि दरवाजे में भूलें हैं। अगर यह परमात्मा के सिंहासन के पास पहुंच जायेगा, तो पायेगा, सिंहासन में गल्तियां हैं। यह परमात्मा की शक्ल सूरत में भी भूल खोजेगा,

यह परमात्मा के उठने-बैठने में भी गल्ती देखेगा।

एक ऐसा आदमी था, उसके बाबत मैंने सुना है। उसने किसी की हत्या की थी, उसे फांसी की सजा हो गयी। अब हत्या वे ही लोग करते हैं जिनको यह भ्रम होता है कि हम ठीक हैं और दूसरा इतना गलत है कि उसे जीने का भी कोई अधिकार नहीं। हत्या वे ही लोग करते हैं——वे ही लोग, जो जीवन को गलत कहते हैं, दूसरे को गलत कहते हैं। वे ही लोग हत्यारे भी सिद्ध होते हैं। उसको फांसी की सजा हो गई, लेकिन फांसी की सजा भी उसको चेता नहीं पायी। उसे जब जेल के भीतर ले जाया जा रहा था अदालत से, तो उसने गुस्से में सुपरिन्टेंडेंट को कहा कि कैसी हथकड़ियां हैं, इतनी वजनी? इतनी वजनी हथकड़ियों की क्या जरूरत है? उसने जाकर कोठरी में, जब उसे बन्द किया जा रहा था, तो उसने लातें फेंकी, चिल्लाया, कूदा कि इतनी छोटी कोठरी? उसे छः सप्ताह बाद फांसी हो जानी है। उसने जेल के अधिकारियों की नाक में दम ला दी। वे रोज प्रार्थना करने लगे कि छः सप्ताह जल्दी बीत जायं। वह आदमी हर चीज में——रोटी फेंक देता, पानी को लात मार देता! बिस्तर तो उठाकर उसने नीचे फेंक दिया कि कैसा बिस्तर है! फिर आखिरी दिन सुबह उसे उठाया गया तो उसने उठने से इन्कार कर दिया। उसने कहा, नाश्ता कहां है, मैं बिना नाश्ता किये फांसी पर नहीं जा सकता। नाश्ता कहां है? उसके लिए दौड़कर नाश्ता लाया गया, उसने नाश्ते में लात मार दी। यह क्या सड़ा सामान ले आये हो, ठीक चीजें लाओ, मैं बिना ठीक चीजें खाये फांसी पर नहीं जा सकता। ठीक चीजें लायी गयीं। उसे जेल से निकालकर फांसी के तख्ते पर

लाया गया। वह जब सीढ़ियां चढ़ने लगा तख्ते की, तो उसने कहा सीढ़ियां हिलती हैं—इससे अगर कोई गिर जाय तो उसकी जान निकल जाय—मैं इन सीढ़ियों पर नहीं चढ़ सकता! फांसी के तख्ते पर जा रहे हैं वह सज्जन! ये सीढ़ियां हिलती हैं, इनसे कोई गिर जाय तो जान खतरे में हो सकती हैं, मैं इन पर नहीं चढ़ सकता! बमुश्किल उसे समझा-बुझाकर सीढ़ियों पर चढ़ाया गया। उसने जाकर ऊपर जो आदमी फांसी देने वाला था, जल्लाद था, उससे कहा कि कैसा सड़ा तख्ता रखा हुआ है। यह बिल्कुल ही सेफ नहीं मालूम होता, यह जरा भी सुरक्षित नहीं मालूम होता, कैसा तख्ता लगा रखा है?

यह आदमी है, मरने के किनारे खड़ा है, लेकिन वह देख रहा है कि तख्ता गलत लगा रखा है! यह तख्ता ठीक होना चाहिए। यह आदमी उन आदमियों की श्रृंखला में है, जो सारी चीजों को, सारे दोषों को जीवन भर, मृत्यु के क्षण तक थोपते चले जाते हैं—बाहर, बाहर, बाहर। जो एक बार भी नहीं पूछते अपने से कि कहीं मैं गलत तो नहीं हूं। एक बार भी जिनके मन में यह प्रश्न नहीं उठता कि कहीं मैं भूल में तो नहीं हूं।

मैं उस आदमी को धार्मिक कहता हूं, जिसके मन में यह प्रश्न उठता है कि मैं गलत हो सकता हूं, मैं भूल में हो सकता हूं। जिस आदमी के मन में यह प्रश्न उठता है कि मैं गलत हो सकता हूं—इतनी बड़ी बस्ती को दोष देने की बजाय शायद यही उचित भी होगा कि मैं गलत होऊं, इतने बड़े जीवन की निन्दा करने की बजाय, यही कहीं ज्यादा आसान मालूम होता है कि मैं गलत होऊं।

लेकिन नहीं, इस अनन्त जीवन पर दोष थोप देते हैं, अपने

को बचा लेते हैं! कभी सोचते भी नहीं कि इसमें कोई प्रपोर्शन भी नहीं है, कोई अनुपात भी नहीं है। इतना अनंत जीवन चल रहा है, अनंत से अनंत तक चलता रहेगा और यह जो इतना चलता है, निश्चित ही परमात्मा की स्वीकृति होगी इसके पीछे, अन्यथा यह चलेगा ही कैसे? यह स्वयं परमात्मा है, अन्यथा यह चलेगा कैसे? लेकिन यह सारा जीवन है असार, यह जगत है छोड़ देने जैसा, भाग जाने जैसा, मर जाने जैसा!

ऐसे धर्म हैं, जो संथारा के लिये—मरने के लिये भी आज्ञा देते हैं! जो कहते हैं कि अगर तुम मरना चाहो तो तुम मर सकते हो! जीवन इतना बुरा है कि आत्महत्या को भी स्वीकार कर लेते हैं क्या है यह?

और जो नहीं इतना स्वीकार करते, वे भी संन्यास के नाम पर ग्रेजुअल स्वीसाइड की आज्ञा देते हैं, धीरे-धीरे मरते जाने की! संन्यास का और मतलब क्या है? जिस संन्यास को हम जानते हैं, वह ग्रेजुअल स्वीसाइड है। पहले पत्नी को छोड़ो, आधे मर गये; बच्चे छोड़ो, और मर गये; घर छोड़ो और मर गये। सब छोड़ते चले जाओ, जब तक तुम्हें पता चले कि सब कुछ छोड़ा जा सकता है! आखिर में तुम बच जाओगे। उसको छोड़ दो, संथारा कर दो, मर जाओ!

यह रुग्ण और मृत्युवादी चित्त हैं। जब जीवन दुःख सिद्ध हो जायेगा, तो अंतिम परिणाम यह होगा कि मृत्यु वरणीय और जीवन अवरणीय हो जायेगा। जीवन छोड़ने योग्य, अवांछनीय, भागने योग्य और मृत्यु स्वीकार करने योग्य, मृत्यु वरण करने योग्य है! फिर कैसा पागलपन है, कैसी विक्षिप्तता है? कैसी

इनसेनिटी है ? क्या सिखाया गया है यह आदमी को ? कि तुम जीवन को छोड़ो और भागो कब्र की तरफ ? और एक बुनियाद पर कि जीवन बुरा है। और वह बुनियाद बिल्कुल ही दो कौड़ी की और गलत है।

आदमी गलत है, जीवन बुरा नहीं है।

कौन कहता है जीवन बुरा है ?

आदमी गलत है, आदमी की साइकोलॉजी गलत है, आदमी का चित्त गलत है। यह हो सकता है कि मैं गलत होऊं, लेकिन जीवन को गलत कहने का मुझे क्या हक है, क्या अधिकार है ? लेकिन नहीं, हम गांव बदलते हैं ! दूसरे गांव चले जायेंगे कि इस गांव के लोग गलत हैं। और हमें पता नहीं, दूसरे गांव में भी हमें ये ही लोग मिलेंगे, जो इस गांव में मिले।

अमरीका में वे खोजबीन करते थे––जोर से तलाक बढ़ते चले जाते हैं। कोई चालीस प्रतिशत तलाकों की संख्या हो गयी ! तो वे खोज-बीन करते थे और खोज-बीन में एक अजीब निष्कर्ष उनके हाथ में आया, जिसका किसी को ख्याल भी न था ! एक आदमी जिन्दगी में आठ तलाक देता है, आठ पत्नियां बदल लेता है। लेकिन हर बार पत्नी बदलता है और पाता है कि दूसरी पत्नी भी दो महीने में पुरानी पत्नी जैसी सिद्ध होती है। तलाकों के लम्बे अध्ययन से यह पता चला है कि जो लोग पत्नियां बदलते हैं, जो पत्नियां पति बदलती हैं, हर बार महीने दो महीने में पाते हैं कि यह तो फिर वही का वही आदमी मिल गया। बड़े मनोवैज्ञानिक परेशान थे कि यह हो क्यों जाती है भूल ? यह भूल नहीं है, यह जीवन का सीधा तर्क है। जिस स्त्री ने पहली बार पति को खोजा

वही स्त्री दूसरी बार भी तो पति को खोजेगी। तीसरी बार भी वही स्त्री पति को खोजेगी। उसकी दृष्टि खोज की वही है। और जो स्त्री पहली बार पहले पति के साथ जीयी थी जिस ढंग से और तीन महीने में जो जो चीज पैदा हो गयी थीं, वह उसी ढंग से दूसरे पति के साथ भी जियेगी। तीसरे पति के साथ भी जियेगी। वही चीजें फिर पैदा हो जायेंगी।

यह गांव बदलना है, तलाक यानी गांव बदलना। मोक्ष की खोज––यानी तलाक देना है, गांव बदलना है। जहां मैं हूं, वहां अपने को बदलने से बचने के हम सब उपाय करते हैं। मैं बदलने से बच जाऊं, इसके हम सब उपाय करते हैं।

और जो आदमी भी हमको यह समझाता है कि तुम ठीक हो, शेष सब गलत हैं, वह हमें बड़ा प्रीतिकर मालूम होता है। इसीलिए तो धर्म गुरुओं को इतना आदर मिला, अन्यथा यह आदर मिलने की कोई जगह नहीं, कोई कारण नहीं। धर्म-गुरुओं को मिले आदर का, रिस्पैक्ट का एक ही कारण है कि वे जीवन को कण्डेम करते हैं और आपको बचा लेते हैं। वे यह कहते हैं, लाइफ इज सच–– जिन्दगी ऐसी है कि दुःख उसमें होगा, तुम क्या कर सकते हो ? जिन्दगी से बचो तो दुःख से बच सकते हो। जिन्दगी ऐसी है कि उसमें अशांति होगी, तुम क्या कर सकते हो ? जिन्दगी को छोड़ो तो शांत हो सकते हो। जिन्दगी ऐसी है कि उसमें चिन्ता आयेगी ही, तुम क्या कर सकते हो ? जिन्दगी से हटो, तो चिन्ता बच जायेगी। और ये दलीलें बड़ी ठीक मालूम पड़ती हैं ! क्योंकि ये सारी दलीलें आपको छोड़ देती हैं और जिन्दगी को कण्डेम कर देती हैं, जिन्दगी को दोषी ठहरा देती हैं। इसलिए धर्म-गुरुओं को इतना आदर और

धर्म की दुखवादी शिक्षाओं को इतना सम्मान मिला है। अन्यथा उनके सम्मान का न कोई कारण है, न कोई वजह है, न कोई अर्थ है। और जिस दिन भी आदमी को यह पता चल जायेगा कि इस भांति आदमी के ट्रांसफार्मेशन में, आदमी की बदलाहट में सबसे बड़ा पत्थर रख दिया गया है, उसीदिन यह सारा आदर परिवर्तित हो जायेगा और ये मूल्य गिर जायेंगे। उस दिन हम देखेंगे, आदमी का सवाल है, जीवन का नहीं।

जीवन वैसा ही हो जाता है, जैसा मैं हूं।

जरा सा फर्क मुझमें और जीवन दूसरा हो जाता है।

एक आदमी का सिर दुःख रहा है। उससे तुम कहो कि चांदनी निकली है, बहुत अच्छी है। वह देखता है चांद को, लेकिन सिर दुखता चला जा रहा है। चांद उसे बिल्कुल दिखायी नहीं पड़ता। एक आदमी बुखार से भरा है, तुम कहो कि गुलाब के फूल खिले हैं, बहुत अच्छे हैं। वह देखता है गुलाब के फूलों को, लेकिन ताप उसके प्राणों को कंपाये जा रहा है, हाथ उसके आग हुए जा रहे हैं, सांस उसकी लपटें हुई जा रही हैं। उसे फूल दिखायी नहीं पड़ते। फूलों में भी उसे लाल, फूलों में भी आग की लपटें दिखायी पड़ती हैं। वह कहेगा कहां हैं फूल, आग की लपटें हैं।

आदमी के भीतर जैसी दशा है, बाहर का जगत उसे वैसा ही दिखाई पड़ता है।

एक मेरे मित्र एक गीत मुझे सुनाते थे। उस गीत में बड़ा अद्भुत अर्थ है। वह गीत था कि एक भूखा आदमी--बिल्कुल भूखा आदमी, सात दिन का भूखा आदमी, एक मित्र के घर ठहरा हुआ, वह मित्र एक कवि हैं पूर्णिमा की रात है, और कवियों को

क्या खबर कि मेहमान जो आया है उसने रोटी भी खायी है या नहीं। वह सात दिन का भूखा है। वह रोटी को तो पूछते नहीं हैं, मित्र को बाहर ले आते हैं और कहते हैं कि पूर्णिमा की रात है, आओ देखें चांद को। वह मित्र भी चांद को देखता है। कवि कविता करता है--मित्र को दिखायी पड़ता है, पूरी रोटी आकाश में लटकी हुई है। कवि कहता है, मुझे प्रेयसी का चेहरा दिखायी पड़ रहा है, मुझे मेरी प्यारी का चेहरा दिखायी पड़ रहा है। वह अपना सिर ठोंकता है, वह कहता है, मुझे कुछ भी दिखायी नहीं पड़ता। मुझे एक रोटी दिखायी पड़ती है। कवि कहता है, तू नासमझ है, मैंने आज तक नहीं सुना कि किसी को चांद में रोटी दिखायी पड़ी हो। यह पहला ही मौका है, कभी मैंने यह उपमा नहीं सुनी। कालिदास ने, भवभूति ने, सेक्सपीयर ने कभी नहीं कहा कि रोटी है। सब कहते हैं कि प्रेयसी का चेहरा दिखायी पड़ता है। तू पागल हो गया है ? तू बड़ा मार्डन पोएट मालूम पड़ता है। तू बड़ी नयी कविता लिखता मालूम पड़ता है। रोटी कहां है वहां ? वह बेचारा घबड़ा कर चुप रह जाता है, क्योंकि परम्परा में कोई गवाही नहीं, कोई विटनेस नहीं। एक गवाही नहीं है कवियों की। एक उस्ताद नहीं कवियों में, जो कह दे हां ठीक, तू ठीक कहता है। जब इतने इतने बड़े महाकवियों को रोटी नहीं दिखायी पड़ी, तो वह कहता है मुझे गलत दिखायी पड़ता होगा। मुझे क्षमा करें। लेकिन वह देखता है, रोटी ही दिखायी पड़ती है ! वह बहुत आखें भींड़ता है, लेकिन रोटी ही दिखायी पड़ती है। यह रोटी चांद का सवाल नहीं है, यह पेंट भूखा है, तो रोटी दिखायी पड़ेगी ही।

स्टेट्स आफ माइण्ड, मेरे चित्त की जो दशा है, जीवन वैसा

दिखायी पड़ता है। जीवन वैसा ही हो जाता है, जो मेरे चित्त की दशा है। मेरे चित्त का ही प्रोजेक्शन है, मेरे चित्त का प्रक्षेपण है जीवन। हम सिनेमा में बैठे होते हैं और पर्दे पर फिल्में दिखायी पड़ती हैं। पर्दे पर कुछ भी नहीं है। पर्दा बिल्कुल खाली है। अगर आपको वह फिल्म मिटानी हो, और आप पर्दे पर जाकर मिटाने लगें, तो लोग आपको पागल कहेंगे। वे कहेंगे, वहां मिटाने को कुछ भी नहीं है। वहां कुछ है ही नहीं। वहां केवल खाली पर्दा है। प्रोजेक्टर पीछे है। देखने वालों को पर्दा दिखायी पड़ता है, प्रोजेक्टर नहीं दिखायी पड़ता। वह पीठ की तरफ है, वह पीछे है, वह दूर अन्धेरे में लगा हुआ है। वहां फिल्म है, वहां प्राण है चित्रों का। वहां से चित्र फेंके जा रहे हैं। पर्दे पर वे दिखायी पड़ते हैं, लेकिन पर्दे पर होते नहीं। फेंके कहीं और से गये होते हैं। जहां होते हैं वहां दिखायी नहीं पड़ते, जहां नहीं होते वहां दिखायी पड़ते हैं।

जीवन भी एक प्रोजेक्शन है, जीवन भी एक प्रक्षेपण है। चित्त पर सारा सब कुछ है, वहां से फेंका जाता है और जीवन के पर्दे पर दिखायी पड़ता है। जीवन कोरा पर्दा है। वहां पोंछने चले जाते हैं। वहां मिटाने चले जाते हैं। लगता है कि पत्नी दुःख दे रही है, पत्नी को छोड़ो। कौन पागल कहता है कि पत्नी दुःख दे सकती है? किसने कहा कि कोई दूसरा दुःख दे सकता है? पत्नी को छोड़ो और भागो वह आदमी भागेगा, लेकिन वह आदमी वही का वही है, जिसको पत्नी दुःख देती थी। कल उसको कोई और दुःख देगा, परसों तीसरा दुःख देगा, चरसों चौथा दुःख देगा। जब सब उसे कतारबद्ध दुःख देंगे, तो वह कहेगा कि पूरा जीवन ही छोड़ने जैसा है। जीवन में आना ही नहीं चाहिए। और वह कभी नहीं पूछेगा, कहीं मैं दुःख का प्रोजेक्टर लेकर तो नहीं घूम रहा हूं। कहीं मैं भीतर ताकत तो लेकर नहीं घूम रहा हूं कि हर चीज को दुःख में बदलने की कीमिया, केमिस्ट्री तो मेरे पास नहीं है? वह है, कीमिया है हमारे पास।

धार्मिक व्यक्ति की सजगता का दूसरा सूत्र मैं आपसे यह कहना चाहता हूं कि इस बात को ठीक से समझ लें कि जीवन वैसा है, जैसे आप हैं। दुख ही जीवन है, तो आपकी दृष्टि दुख:पूर्ण होगी। आनंदपूर्ण हो सकता है जीवन, अगर आपकी दृष्टि आनन्दपूर्ण हो। इसलिए जीवन को दोष देना बन्द कर दें। जीवन को दोष देना बहुत हो चुका और इस शिक्षा के भारी दुष्परिणाम मनुष्य जाति को भोगने पड़े हैं। अगर आगे भी यह चलता रहा तो मैं आपसे निश्चित कहे देता हूं——वह दिन गये, जब कि थोड़े बहुत लोग आत्म-हत्या कर लेते थे और संन्यासी हो जाते थे, अब वे दिन करीब आते हैं, और यह भी हो सकता है कि हम सामूहिक रूप से आत्म-हत्या करने की तैयारी करें—यूनिवर्सल स्वीसाइड कर लें एक ही दिन तय करके खत्म कर लें अपने को।

एक घण्टा मैं यहां बोलता हूं, उस बीच एक हजार लोग पृथ्वी पर आत्महत्या कर लेते हैं। बारह घण्टे में बारह हजार लोग, चौबीस घण्टे में चौबीस हजार लोग! एक घण्टे में एक हजार लोग हत्या कर रहे हैं। यह संख्या कम है, थोड़ी कम है, क्योंकि लोग धार्मिक भी थोड़े कम हैं। धर्म-गुरुओं की कोई मान्यता भी नहीं है। यह संख्या कम है। यह संख्या बढ़ती चली जायेगी। यह संख्या बड़ी होती चली जायेगी। यह संख्या उस सीमा तक पहुंच सकती है कि हम सबको ऐसा लगे कि जब जीवन इतना दुःखपूर्ण तब क्यों जियें?

पश्चिम के एक बहुत बड़े विचारक ने अभी कहा कि अठ्ठाईस

साल के बाद हर समझदार आदमी को आत्महत्या कर लेनी चाहिए क्यों ? क्योंकि अट्ठाईस साल तक समझ पूरी हो जाती है। तब तक नहीं दिखायी पड़ता है कि जीवन असार है। तो तुम बुद्धू हो, मन्द बुद्धि हो, कायर हो, मरने की हिम्मत नहीं है तुममें। इसलिए तुम जिये जा रहे हो। जीवन तो व्यर्थ है, तुम काहे के लिये जिये चले जा रहे हो। अट्ठाईस साल तक वे छूट देते हैं। कि कितनी देर में बुद्धि थोड़ी विकसित होगी तो दिखायी पड़ जायेगा। लेकिन उन्होंने खुद अभी आत्महत्या नहीं की है, वह अट्ठाईस साल बहुत दिन पहले पार कर चुके ! वह शायद इस कारण, दया के वश कि अगर वह आत्महत्या कर लेंगे, तो आत्महत्या समझाने के लिए कौन बचेगा। शायद इस कारण।

यह जो जीवन के प्रति रुख है, यह जो जीवन के निषेध का, निगेशन का, विरोध का रुख है, यह रुख कभी किसी को धार्मिक नहीं बना सकता है। क्योंकि धार्मिक तो वही बन सकता है, जिसे जीवन में इतना आनन्द अनुभव हो कि आनन्द के कारण वह परमात्मा का कृतज्ञ हो सके, ग्रेटीट्यूट उसमें पैदा हो सके।

धार्मिक आदमी का मतलब क्या है ?

ग्रेटफुलनेस, ग्रेटीट्यूट, धन्यता का भाव। उसे ऐसा लगे कि परमात्मा को धन्यवाद देने जैसा है। उसे ऐसा लगे कि मैं एक सांस भी लेता हूं तो अनुग्रहीत हूं प्रभु का—कि तूने मुझे एक मौका दिया कि मैंने सांस ली, कि मैंने आंख खोली और सूरज की किरणों को नाचते देखा, कि तूने मुझे कान दिये और मैंने संगीत के शब्द सुने। और तूने मुझे हृदय दिया कि मैं प्रेम कर सका। और तूने मुझे हाथ दिये कि मैं किसी को छू सका स्मरण कर सका, जिस दिन ऐसा

लगे कि तूने मुझे इतना दिया, इतना कि मेरे प्राण अनुग्रह से भर जायं। मेरे प्राण कृतज्ञता से भर जायं, मैं धन्यवाद से भर जाऊं, मेरी श्वांस-श्वांस धन्यवाद देने लगे, तो मैं प्रभु के मंदिर में प्रविष्ट हो सकता हूं, लेकिन दुख मानने वाले लोग धन्यवाद से कैसे भर सकते हैं ? वे तो क्रोध से भरे होते हैं। वे तो परमात्मा से बदला लेने के भाव से भरे होते हैं कि तुमने हमें जन्म दिया—अगर मिल जाओ तो हम तुम्हें बतायें।

परमात्मा इसीलिए मैंने सुना है, छिपा रहता है। आता नहीं इधर-उधर कि आदमी मिल जायं तो उसकी हत्या कर दें। कि तुमने हमें जन्म दिया, तुमने मेरी शादी करवायी, तुमने मुझे दुकान करवायी, तुमने मुझे बच्चे दिये तुमने मुझे बम्बई का निवासी बनाया मेरी जान ले ली। तुम्हारी मैं हत्या करूंगा, तुम्हें मैं छोड़ नहीं सकता। भगवान इसीलिए छिपा रहता है।

सुना है मैंने, जब उसने पृथ्वी बनायी, आदमी बनाये—आदमी को बनाते ही वह बहुत घबड़ा गया और उसने देवताओं से पूछा कि कोई रास्ता बताओ, मैं आदमी से कैसे बचूं ? क्योंकि यह बड़ा खतरनाक मालूम होता है। यह मुझे खोज लेगा तो मेरी मुसीबत हो जायेगी। मैं कैसे बचूं, मैं कहां छिप जाऊं ? किसी देवता ने कहा, आप हिमालय पर छिप जाइये, कैलाश पर्वत पर बैठ जाइए, आदमी वहां तक नहीं पहुंच पायेगा। उसने कहा तुम्हें पता नहीं आज नहीं कल, कोई न कोई तेनसिंह, कोई हिलेरी पैदा हो जायेगा और चढ़ जायगा। वह पकड़ लेगा मुझे, मैं दिक्कत में पड़ जाऊंगा। वहां मैं नहीं जा सकता। दूसरे देवता ने कहा, तुम पैसिफिक महासागर में छिप जाओ। पांच मील गहरा है, वहां नीचे बैठे रहो, वहां सूरज की

किरण भी नहीं पहुंचती। उसने कहा तुम्हें आदमी का पता नहीं, जहां सूरज की किरण नहीं पहुंचती, वहां वह पहुंच जायेगा। उसे ऐसी जगह जाने में बड़ा रस आता है, जहां जाने का कोई मतलब नहीं होता। जहां जाना बिल्कुल बेकार है, वहां वह जरूर चला जाता है! जहां जाने का काम है, वहां आदमी कभी नहीं जायेगा! जहां जाने की कोई जरूरत नहीं है, वहां वह हजार यात्रा करेगा, जान जोखम में लगायेगा और पहुंच जायेगा! वहां मुझे मत छिपाओ, मुझे कोई ठीक सुरक्षित जगह बताओ? फिर एक बूढ़े देवता ने कहा, एक ही तरकीब है कि तुम आदमी के भीतर छिप जाओ। उसे ख्याल ही नहीं आयेगा कि इतना धोखा, इतना डिसेप्शन भी हो सकता है कि हमारे भीतर छिपे हो। वह सारी दुनिया खोज लेगा और अपने भीतर नहीं झांक पायेगा तो वहीं छिपकर बैठ गया बेचारा। तब से वहीं छिपकर बैठा हुआ है। और उसकी खोज नहीं हो सकती।

दुःखी आदमी सब जगह जा सकता है, अपने भीतर नहीं जा सकता है, इसका आपको पता है?

दुःखी आदमी अपने भीतर जाने से डरता है। दुःखी आदमी चाहता है, मैं कहीं भी चला जाऊं, लेकिन भीतर न जाऊं। अकेला न रह जाऊं कहीं, नहीं तो भीतर का दुःख दिखायी पड़ने लगेगा। आदमी दुःख के कारण अन्तर्गमन नहीं करता है। जहां दुःख है, वहां जाने से क्या सार? इसलिए कोई भी आदमी अपने साथ रुकने के लिए क्षण भर को तैयार नहीं होता। वह कहता है, अखबार लाओ जल्दी से! मैं अकेला बैठा क्या करूं? अखबार पढ़ूंगा। अखबार पढ़ लेता है, तो बेचारा रेडियो खोल लेता है। रेडियो खत्म होजाता

है तो होटल में बैठ जाता है, क्लब में चला जाता है। कहीं जगह नहीं मिलती है, मंदिर में चला जाता है। धर्म-गुरू की बातें सुनने लगता है, धर्म-सभा में बैठ जाता है। लेकिन जब तक जागता है, भागता रहता है, अगर कुछ नहीं मिलता है, तो शराब पी लेता है, ताकि सब भूल जाय। सिनेमा में बैठ जाता है, ताकि सब भूल जाय। किसी तरह भूल जाय। सो जाय, भूल जाय। या डूबा रहे, उलझा रहे, आकुपाइड रहे। या नींद में हो जाय। या बेहोश हो जाय। लेकिन ऐसा मौका न आ जाय कि अपने साथ अकेला हो, टू बी विथ वनसेल्फ। कभी ऐसा न हो जाय कि अपना साथ छूट जाऊं क्योंकि अपना साथ छूटा कि वह सारा दुःख जो मैंने साथ इकट्ठा कर रखा है, वह दिखायी पड़ना शुरू होगा। वह इतना घबड़ाने वाला है कि वह आत्म-हत्या करने को तैयार कर देगा कि मर जाओ, ऐसे जीने में ठीक नहीं है।

इसलिए सारी दुनिया एस्केप करती है, अपने से भागती रहती है, अपने से भागती रहती है! पति पत्नी से भाग रहा है, पत्नी पति से भाग रही है! बाप बेटों से भाग रहे हैं, बेटे सिनेमागृह में भाग रहे हैं! सब भाग रहे हैं, सारी दुनिया भाग रही है! पूछो किससे भाग रहे हैं? कहां के लिए भाग रहे हैं? कोई उत्तर नहीं दे सकता कि मैं कहां जाना चाहता हूं! एक उत्तर हरएक दे देगा कि मैं अपने से बचना चाहता हूं, मैं अपने से भागना चाहता हूं! मेरी अपने से मुलाकात न हो जाय, कहीं मैं खुद से न मिल जाऊं, यही एक डर है! और सब कुछ हो जाय, अपने से मिलना न हो जाय।

इसीलिए लोनलीनेस, अकेलापन काटता है, घबड़ाता है। एक

आदमी को कहो कि अकेले रहना पड़ेगा छः महीने, वह कहेगा, मैं पागल हो जाऊंगा। अकेले में नहीं रह सकता। मुझे कंपनी चाहिए, मुझे साथ चाहिए। साथ किसलिए चाहिए ?

आनंदित आदमी अकेला रह सकता है, दुःखी आदमी अकेला नहीं रह सकता।

आनंदित आदमी अकेला रहना चाहता है, भीड़ से बचना चाहता है, क्योंकि आनंदित आदमी जब भीड़ में खड़ा होता है, तब भी वह अकेला होता है, तब भी वह अपने भीतर के रस को गुनता रहता है। तब भी उसके भीतर कोई संगीत बजता रहता है, वह उसे सुनता रहता है। तब भी भीतर कोई आनन्द का झरना बहता रहता है, वह उसमें डूबा रहता है। वह भीड़ में भी अकेला होता है।

और अकेला आदमी, अकेले में भी भीड़ में होता है। अगर भीड़ नहीं मिलती, तो आंख बन्द करके विचार करने लगता है कि फलांने दुश्मन को गोली मार दूं, फलांने मित्र के पास चला जाऊं, पत्नी को छोड़ कर दूसरी शादी कर लूं। कि क्या करूं, कि क्या न करूं। वह अपने हिसाब में लगा रहता है। एक क्षण को भी वह अपने साथ नहीं होना चाहता है! जीवन भर अपने साथ नहीं, मरते क्षण तक अपने साथ नहीं!

एक आदमी मर रहा था। मरण-शैया पर पड़ा है, उसकी पत्नी उसके पास बैठी है। चिकित्सकों ने कहा है, आज सांझ सूरज के डूबने के साथ यह समाप्त हो जायेगा। उसने आंख खोली, सूरज डूबने के करीब है। उसने पूछा कि मेरा बड़ा बेटा कहां है? उसकी पत्नी ने कहा, आप निश्चिन्त रहें, वह आपके पैरों के पास

बैठा है। पत्नी की आंखों में तो आंसू आ गये। उसके पति ने अपने बेटों के लिए कभी भी नहीं पूछा था—उसे फ़ुरसत नहीं मिली थी धन कमाने से, दिल्ली की यात्रा करने से, उसे फ़ुर्सत नहीं मिली थी। वह एम० पी० बनता कि बेटों को पूछता। वह एक बड़ा मकान बनाता, कि बेटों की फिक्र करता कि वे कहां हैं? लेकिन उसकी पत्नी को लगा कि आज शायद मृत्यु के अन्तिम क्षण में, विदाई के क्षण में उसे प्रेम का स्मरण आ गया, उसे बेटे की स्मृति आ गयी। और उसकी आंखें गीली हो गयीं, और उसने खुशी से कहा, बिल्कुल चिन्ता न करें, वह आपके पैरों के पास है। और उस आदमी ने कहा, और उससे छोटा बेटा? वह भी पास था उससे छोटा। पांच बेटे थे। सबसे छोटा? उसकी पत्नी ने कहा, आप बिल्कुल निश्चिंत रहें, हम सब यहां मौजूद हैं, हम सब आपके पास बैठे हैं। कोई कहीं बाहर नहीं। वह आदमी हाथ टेक कर बैठ गया! उसने कहा, इसका क्या मतलब, फिर दुकान पर कौन बैठा होगा?

वह पत्नी भूल में थी। वह आंसू उसने व्यर्थ बहाये। वह खुशी उसमें नासमझी की थी। वह यह नहीं पूछ रहा था कि बेटे कहां हैं, वह यह पूछ रहा था कि दुकान चल रही है इस वक्त, कि नहीं चल रही है। वह यह पूछते ही मर गया। लेकिन मरते क्षण भी वह दुकान पर बैठा हुआ था, अपने पास नहीं। जीवन भर, बाहर, बाहर, बाहर। पर क्यों?

क्योंकि भीतर हमने दुःख पाल रखा है, दृष्टि दुःख की पाल रखी है—और यह सारी बात दृष्टि की है।

एक अन्तिम बात, फिर तीसरे सूत्र पर हम कल बात करेंगे।

यह सारी बात दृष्टि की है। जीवन को दुःखवादी दृष्टि से देखने के भ्रम को छोड़ दें। ख्याल छोड़ दें कि जीवन बुरा है। अगर

बुरा हूं तो मैं बुरा हूं। और अगर यह स्मरण आ जाय कि मैं बुरा हूं, तो बदलाहट की जा सकती है।

जीवन को आप कैसे बदल सकते हैं? अगर जीवन बुरा है, तब तो बदलने का कोई उपाय न रहा। जीवन है विराट, अनंत—— मैं क्या कर सकूंगा! एक बूंद छोटी सी, मैं सागर को कैसे बदलूंगा।

तो फिर एक ही रास्ता है कि मैं समाप्त हो जाऊं, क्योंकि इसको तो बदला नहीं जा सकता। इससे निराशा, इससे हताशा पैदा हुई। इससे रिनकसिंएशन और संन्यास——तथाकथित संन्यास पैदा हुआ। इससे जीवन को छोड़ने वाली परम्पराएं पैदा हुईं जीवन से भागने वाले लोग पैदा हुए, जीवन की निन्दा करने वाले शिक्षक पैदा हुए। और सारी दुनिया को उन्होंने दुःख के एक अंधकारपूर्ण घेरे में घेर कर खड़ा कर दिया। हम सब घेरे में खड़े हैं——इस घेरे को तोड़ दें।

कल मैंने कहा था व्हीरिबैलिअस अगेंस्ट नालेज।

आज आप से कहता हूं, व्हीरिबैलिअस अगेंस्ट पैसिइज्म।

विद्रोह है ज्ञान के प्रति, ताकि विस्मय जग जाय।

और विद्रोह है दुःखवादियों के प्रति, ताकि आनंद की क्षमता का सूत्र शुरू हो जाय। ताकि वह किरण फूट सके, जो आनन्द की है।

वह किरण कैसे फूट सकती है, उसकी तीसरे सूत्र में कल मैं आप से बात करूंगा।

मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना, उसके लिए बहुत-बहुत आनंदित और अनुग्रहीत हूं। सबके भीतर बैठे परमात्मा को अन्त में प्रणाम करता हूं। मेरा प्रणाम स्वीकार करें।

अब तक प्रकाशित कुछ स्टार पॉकेट बुक्स

अपनी पसंद की पुस्तकें इनमें से चुनिये ।

उपन्यास

❁पिंजरा (गुलशन नन्दा)
❁अंधेरे चिराग ,,
❁अंबर ,,
०कटकिनी ,,
०सांवली रात ,,
०देव छाया ,,
०सितारों के आगे ,,
०घाट का पत्थर ,,
०राख और अंगारे ,,
०जलती चट्टान ,,
०शीशे की दीवार ,,
०टूटे पंख ,,
०दाग़ (स्क्रीन-प्ले) ,,
०सांझ की बेला ,,
❁चिनगारी ,,
!गेलार्ड ,,
!नीलकंठ ,,
०सपनों की दीवार (राजवंश)
०तूफान ,,
०आशंका ,,
०रूप और दर्पण ,,
०अंधेरे उजाले ,,
०मिलाप ,,
०निशानी ,,
०सपनों की छाया ,,
०निकम्मा ,,
०सहारा ,,
०वासना ,,
❁पुतली ,,
०जान-पहचान ,,

०सांझ और सवेरा (राजवंश)
०लाज ,,
०शिकायत ,,
०प्यासे नैना ,,
०परिवर्तन ,,
०अभिमान ,,
० उपासना ,,
०रंगरलियां ,,
०मेहमान ,,
०मदहोश ,,
०आवारा (समीर)
०विश्वासघात ,,
०आंख मिचौली ,,
०कल्पना ,,
०परिन्दा ,,
०वह लड़की ,,
०सुबह के भूले ,,
०बलिदान ,,
०तलाश ,,
०वरदान ,,
०चितचोर ,,
०उमंग ,,
०वह लड़की ,,
०लाडली ,,
०एक भूल (लोकदर्शी)
०अभिलाषा ,,
०कोमल ,,
०झूठे सपने ,,
०दो किनारे ,,

०विवेक (लोकदर्शी)
०हारजीत ,,
०मंजिल ,,
०दीवाना ,,
!सफर (गुरुदत्त)
!दीन दुनिया ,,
!अंधेर नगरी ,,
❁आकाश-पाताल ,,
❁परम्परा ,,
❁गगन के पार ,,

जासूसी उपन्यास

०खून के बदले में (गुप्तदूत)
०चोरी की लाश ,,
०औरत खतरा और मौत ,,
०तीसरा खूनी ,,
०लहू के धब्बे ,,
०खूनी सपने ,,
०चीखती रातें ,,
०कदम-कदम पर खतरा ,,
०सुनहरी लाशें ,,
०पांचवीं गोली ,,
०हत्यारा प्रेमिकाओं का ,,
यह लाश किसकी है ,,
भयानक स्कीम (इं० गिरीश)
०न्याय के हत्यारे ,,
०अन्धेरे का भूत ,,
डा० बुलडाग (आरिफ)
किताब के खूनी ,,
खून का रंग ,,
आग का खेल ,,

अन्य रोचक उपन्यास

०२७ डाउन (रमेश बक्षी)

०आग की लकीर (अमृता प्रीतम)
अतीत की परछाइयां ,,
समझौता (आरिग सारहदी)
नमक हराम ,,
०बादलों के पीछे (रमेश भारती)
०चाकर गाथा (विमल मिश्र)
खुशबू (राजदीप)
०घुन लगी बस्तियां (जयवत दलवी)
०थके पांव (भगवतीचरण वर्मा)
०आखिरी दांव ,,
०कलंक (शिवकुमार जोशी)
०बदनाम गली (कमलेश्वर)
०असमर्थ की यात्रा (त्रि० गोपीचन्द)
रात की धूप (निर्मल)
उलटे कदम (रवीन्द्र थापड़)
चकोरी (विजय कुमार गुप्त)
बीच का समय (रामदरश मिश्र)
कौन पर्दा ढाके (दुग्गल)
उड़े हुए रंग (सर्वेश्वर सक्सेना)
नीलिमा ,,
मौत और मंजिल (रेवतीसरन शर्मा)
०कुछ नहीं कहते (मुसाफिर)
०दर्द के रिश्ते ,,
मुरझाए फूल ,,
आदमी और सिक्के (महेन्द्र नाथ)
नींव की मिट्टी (शिवसागर)
मन के काले (कृपा शंकर)
कांपती उंगलियां (गोविन्द मिश्र)
०संकल्प (विजयकुमार गुप्त)
रास्ते अपने-अपने ,,
गुलाबी धूप (कमल शुक्ल)
पंजाब की बेटी (अख्तर)

असली-नकली चेहरे (दयानन्द वर्मा)
अचला (सेठ गोविन्ददास)
स्वप्न सुन्दरी (मधुकर)

कहानी-संग्रह

सपनों की फांसी (पी०डी०टंडन)
एक लड़की शोभा (महीप सिंह)
रोशनी का रंग (पद्मा चतुर्वेदी)
०उसकी चूड़ियां (दुग्गल)

शेरो-शायरी व कविता-संग्रह

। उर्वशी तथा अन्य श्रृंगारिक कवितायें (रामधारीसिंह दिनकर)
दिनकर के गीत ,,
तो मैं क्या करूं ? (गोपाल प्रसाद व्यास)
०तलखियां (साहिर लुध्यानवी)
०आओ कि कोई ख्वाब बुनें ,,

अन्य महत्त्वपूर्ण पुस्तकें

❁भारत की १५ भाषाएँ (माचवे)
०सफलता कैसे मिले ? (समरबहादुर सिंह)
०याद रही बातें (अक्षयकुमार जैन)
०जीवन दर्शन (भगवान श्री रजनीश)
०हंसना मना है (आचार्य रजनीश)
०भारत गांधी और मैं ,,
काम ध्यान और आध्यात्म ,,
०सम्भावनाओं की आहट ,,
०उसके साजन (कुशवाहा कान्त)
०दानव देश ,,
❁खून का प्यासा ,,
लुई की आत्मा (रोमांचकारी)
क्या पाकिस्तान जिंदा रहेगा ? (अख्तर)
राजनीति से दूर (जवाहरलाल नेहरू)
योरुप में २८ दिन (अमरनाथ)
चन्द्रयात्रा के रोमांच (ज्ञान-विज्ञान)
०विजय के सूत्रधार : बाबू जगजीवनराम (जीवनी)
गांधी के देश से लेनिन के देश में (यात्रा)
राजेश खन्ना : एक व्यक्ति एक अभिनेता
०मजेदार भोजन खाइए खिलाइये

। चिन्ह की पुस्तकों का मूल्य पांच रुपये।
❁ चिन्ह की पुस्तकों का मूल्य चार रुपये।
० चिन्ह की पुस्तकों का मूल्य तीन रुपये।
शेष दो रुपये प्रति पुस्तक

प्रकाशक :
स्टार पब्लिकेशंज, (प्रा.) लि०
४/४ बी, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-११०००२